शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जुलाई : १९६४ ☆ वर्ष २०वाँ, ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४९० ☆ अंक : २

बम्बई महोत्सव अंक

[२३०]

दादर (बम्बई के भव्य समवसरण में श्री सीमन्धर भगवान की प्रतिष्ठा हुई। वीर संवत् २४९०, बैसाख सुदी ११)

नया प्रकाशन

हीरक जयंती अभिनंदन ग्रंथ

पृष्ठ संख्या ८००, सुंदर चित्र ३४३, उत्तम छपाई,
मूल्य १८) रुपये होने पर भी
मात्र ६) रुपये में। डाकखर्च २)५० नये पैसे।

इस ग्रंथ में उच्च कोटि के विद्वानों के विस्तृत लेख, खास व्यक्तियों के लेख-लेखांजलि-अभिनंदन, विशिष्ट श्रुतधर आचार्य व विद्वानों का परिचय (१३ काव्य, १४३ लेख)। उपरांत गुजराती भाषा में पूज्य कानजी स्वामी की जीवन कला, अनेक विशेषताएँ, धर्म-प्रभावना, १५ काव्य, ३२१ लेख-लेखांजलि-संदेश।

यह विशाल काय ग्रंथ
भारत के प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के शुभ हस्त से
पूज्य कानजी स्वामी को
बम्बई में ७५ वीं जन्म-जयन्ती महोत्सव के समय अर्पण हुआ है।

जिज्ञासुओं की माँग अधिक होने से प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ शीघ्र ही अप्राप्य हो जावेगा। मँगाते वक्त ६) रुपये तथा पोस्टेज २.००) रुपये मिलाकर ८.००) का मनिआर्डर ही भेजें।

प्राप्तिस्थान
(१) श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
(२) श्री दिगम्बर जैन मंदिर
१७३-७५, मुम्बादेवी रोड, बम्बई नं० २

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जुलाई : १९६४ ☆ वर्ष २०वाँ, ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४९० ☆ अंक : २

नमः समयसार के आठ अर्थ

स्वानुभूति वैभव, अनेकांत द्वारा वस्तु की निश्चित मर्यादा

(समयसार शास्त्र के मंगलाचरणरूप प्रथम कलश पर, पूज्य कानजी स्वामी का अद्भुत प्रवचन)

[तारीख २२-१०-६२, कार्तिक कृष्णा-११]

'नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।' कल श्री समयसार पर १४वीं बार प्रवचनों का आरम्भ हुआ। उसके मंगलाचरण के अपूर्व अर्थ होंगे। श्री अमृतचंद्राचार्य महामुनि दिगंबर संत थे। सर्व शास्त्रों के पारगामी, सातिशय निर्मल बुद्धि के धारक थे। उनके द्वारा समयसार टीका के साररूप कलशों की रचना हुई है। उन श्लोकों पर श्री शुभचंद्राचार्य ने परम अध्यात्मतरंगिणी में इस प्रथम पद 'नमः समयसाराय' के आठ अर्थ किये हैं।

प्रथम सामान्य एक अर्थ में समयसार अर्थात् परमात्मा को नमस्कार करने के पश्चात् विशेषरूप से पंच परमेष्ठी और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, इन आठ निर्मल पदार्थों को नमस्कार किया है।

इस शास्त्र का नाम 'समयसार नाटक' क्यों है ?—कि जिसप्रकार किसी राजा का सम्पूर्ण जीवन नाटकरूप में कहना हो तो संक्षेप में साररूप सब बातें आ जाती हैं; उसीप्रकार यह आत्मा स्वभाव से परमात्मस्वरूप है, तथापि अपनी भूल के कारण अनादि से किसप्रकार परिभ्रमण किया, और फिर भेदविज्ञानमय अध्यात्मविद्या के बलपूर्वक; भगवती प्रज्ञा के बल द्वारा साधकदशा और

सिद्धदशा कैसे प्रगट करता है, उसका वर्णन नाटकरूप में किया है। नवतत्त्वों में मोक्षतत्त्व भी चिदानंद चैतन्य राजा का स्वांग है।

त्रिकाल अपने ही गुण-पर्यायरूप से परिणमित हो, उसे पदार्थ-समय कहते हैं। प्रथम से ही अनेकांतरूप से स्वतंत्रता का ढिंढोरा है कि—प्रत्येक पदार्थ सम्यक् प्रकार से अपने ही गुण-पर्याय को प्राप्त करता है, पाता है, पकड़ लेता है; किंतु कोई पदार्थ किसी दूसरे के गुण-पर्याय को कुछ नहीं कर सकता।—इसका नाम सम्यक् अनेकांत है।

सर्वज्ञ भगवान ने ज्ञान द्वारा जातिरूप से छह द्रव्य-छह पदार्थ देखे हैं। द्रव्य—अनंत गुणों का पिंड; गुण—उसकी त्रैकालिक शक्ति, जो द्रव्य के संपूर्ण भाग में और उसमें तीनों काल रहती है। गुण प्रगट नहीं होते, किंतु उनकी शक्ति में से निरंतर नई-नई पर्यायें व्यक्त-प्रगट होती रहती हैं और उसमें लय-व्यय होकर शक्तिरूप से रहती हैं। प्रत्येक द्रव्य अपनी सत्तारूप से स्थित रहता है, उसके किसी अंश का सर्वथा नाश नहीं है, तथा उसमें से बिलकुल नवीन वस्तु उत्पन्न नहीं होती। समस्त द्रव्य सदैव अपनी अर्थक्रिया शक्ति से परिपूर्ण है, उनमें किसी ईश्वर अथवा परपदार्थ का हस्तक्षेप नहीं है—पराधीनता नहीं है। अनादि-अनंत स्थित रहनेवाले उन छह द्रव्यों के नाम है—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। उन छह पदार्थों में जीव पदार्थ मुख्य है। ऐसे अनंत जीव अर्थात् आत्मा हैं, उनमें सर्वोत्कृष्ट सारभूत परमात्म पदार्थ है। समयसार अर्थात् शुद्धात्मा। शुद्धात्मा=ज्ञानावरणीय आदि द्रव्य कर्मरूपी मल, तथा राग-द्वेष-मोहरूपी भावकर्म-मल तथा पंच प्रकार के शरीर, उनके संबंध से मुक्त, ऐसा शुद्ध परमात्म समयसार को मुख्यतया नमस्कार करने में उनमें पंच परमेष्ठी और रत्नत्रय पदार्थ समय को नमस्कार आ जाता है।

सर्व पदार्थ त्रिकाल समयते—अपने रूप से स्थित रहकर सम्यक् प्रकार से स्वाधीनरूप से अयते—गमन करते हैं, परिणमित होते हैं। जो जीव संसारदशा से मुक्त होकर सिद्ध परमात्मा हुए, वे भी सदा स्वसत्तारूप से स्थित रहकर निरंतर परिणमित होते हैं। वेदान्तादि मानते हैं, ऐसे कूटस्थ वे नहीं हैं किंतु प्रतिसमय अक्षय अनंत आनंद का अनुभव करते हैं, अनंत ज्ञान-सुखरूप परिणमित होते हैं। ग्रंथ के आदि में ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा को नमस्कार करता हूँ—ऐसा कहकर मंगलाचरण किया है।

परमात्मा किससे शोभायमान हैं?—तो कहते हैं कि केवलज्ञान लक्ष्मी से परिणमित और स्वानुभूति से शोभायमान-दैदीप्यमान हैं; किंतु किसी के कर्ता, भोक्ता या स्वामित्व की उपाधिरूप

नहीं हैं। अपने में शक्तिरूप से अनंत अपार ज्ञान-आनंदादि शक्तियाँ थीं, वे पूर्णानंद प्रकाश-प्रगट प्रत्यक्ष दशारूप होकर वर्तती हैं—इसप्रकार प्रत्येक सिद्ध परमात्मा अपनी परम महिमा से शोभायमान है। संसारी आत्मा भी ऐसी शक्ति सहित है-रहित नहीं है। जो सिद्ध परमात्मा हुए हैं, वे निर्मल भेदविज्ञानरूप स्वानुभूति क्रिया से ही हुए हैं।

और परमात्मा कैसे हैं?—कि 'चित्स्वभाव'; दर्शन-ज्ञानस्वभावी (दर्शन-ज्ञान द्वारा सर्वदर्शी—सर्व को जाननेवाले) हैं। 'सर्व भावान्तरच्छिदे'; विश्व के सर्व पदार्थों तथा उनके सर्व भावों को (त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसहित सर्व को) एक समय में एक साथ छेदन-भेदन करके सर्व प्रकार से जानते हैं। ऐसे सम्पूर्ण निर्मलज्ञान-दर्शन द्वारा सर्वभावों के परिच्छेदकरूप से जाननेवाले परमात्मा को नमस्कार हो।

जो परमात्मा का स्वरूप इससे भिन्न प्रकार से मानते हैं, उनका इसमें निषेध हो जाता है। यहाँ आज पहली बार इसप्रकार अर्थ हो रहा है।

'सर्व भावान्तरच्छिदे' का दूसरा अर्थ—आत्मा के भाव के अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थों तथा उनके भावों को भावांतर कहा जाता है। इस आत्मा के अतिरिक्त अनंत जीव-अजीव पदार्थ हैं, वे अपने से भिन्न ही हैं; उन्हें स्वभाव से निजशक्ति से ज्ञानस्वभाव द्वारा पृथक् करता है—पृथक् हैं ऐसा जानता है। सर्वज्ञ भगवान उन समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा पृथक्-पृथक् ज्यों का त्यों जानते हैं। उसमें **भावाय में द्रव्य, चित्स्वभावाय में गुण और स्वानुभूति पर्याय है।** श्लोक के चार बोलों का परमात्मपदार्थरूप से अर्थ किया कि—परमात्मा ऐसे ही होते हैं।—ऐसा अस्ति से कहा वहाँ नास्तिपक्ष से अन्य परमात्मा नहीं होते।

(१) जिन शब्द से अरिहंतदेव अर्थ निकलता है। जो पूर्वोक्त पदार्थों को जानते हैं। गुण-पर्यायों को प्राप्त पदार्थों को तथा स्व-पर सर्व को जानते हैं; अथवा स्याद्वादरूप विद्या से (सम्यक्ज्ञान द्वारा) अनेकांतमय वस्तु को वस्तुरूप से जानते हैं। द्रव्य, द्रव्यरूप से है; अन्य द्रव्यरूप नहीं है; गुण, गुणरूप से है; अन्य गुणरूप नहीं है—परसत्ता के आधार नहीं है। प्रतिसमय प्रगट होनेवाली द्रव्य की पर्यायें भी स्व से सत्‌रूप हैं, पर पर्यायरूप नहीं हैं। द्रव्य के जो प्रदेश हैं, वे उसी नंबर के प्रदेशरूप हैं, अन्य प्रदेशरूप नहीं हैं। पररूप न होना, वह कथंचित् असत्‌पना अपना निज धर्म है। इसप्रकार सम्यक् स्याद्वाद के द्वारा अस्ति-नास्ति से प्रत्येक वस्तु को स्वतंत्र पदार्थ कहा है। जैसे द्रव्य-गुण नित्य एकरूप है, वह सामान्य वस्तुरूप से नित्य ही है, अक्रम ही है, काल

की अपेक्षा से क्रमरूप नहीं है और प्रतिसमय होनेवाली द्रव्य की पर्यायें क्रमरूप ही हैं, अक्रम नहीं हैं—जो ऐसे सम्यक् नियम को बतलाता है, वह स्याद्वाद है। किंतु पर्याय के क्रमवर्ती स्वभाव को यदि कोई अक्रमवर्ती भी माने तो उसे एक भी वस्तु का पता नहीं है—स्याद्‌वाद का ज्ञान नहीं है।

लोकव्यवहार में अक्रम, अकस्मात् कहा जाता है, किंतु सम्यग्ज्ञान में तो जैसा सुनिश्चित वस्तुस्वरूप है, वैसा ही माना जाता है।

जिन शब्द में सातिशय सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय (बारहवें) गुणस्थान तक समस्त आत्माओं को जिनसमय कहा जाता है। जैसे सातवें गुणस्थान से शुक्लध्यान की श्रेणी चढ़ने की तैयारीवाले को सातिशय अप्रमत्त कहा जाता है, उसीप्रकार सिद्ध परमात्मपद लेने की तैयारीवाले जो कोई हैं, उन सातिशय सम्यग्दृष्टि से बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव को जिनसमय नामक पदार्थ कहा जाता है।

समयसार, गाथा ३१-३३ में निश्चय स्तुति के अर्थ में—जो जितेन्द्रिय, जितमोह और क्षीणमोहरूप से साधकदशा में प्रवर्तमान हैं, उन्हें जिन कहा है। वहाँ चौथे से बारहवें गुणस्थान में वर्तते हुए समय पदार्थों को जिन-वीतराग-पूज्य कहा है। [गोम्मटसार टीका में सम्यक्त्वसनमुख अपूर्वकरण स्थित को जिन कहा है, और प्रवचनसार में चरणानुयोग चूलिका की प्रथम गाथा की संस्कृत टीका में श्री जयसेनाचार्य ने सासादन सम्यग्दृष्टि को भी एकदेश जिन कहा है, वह बात यहाँ नहीं है।]

अब स्वानुभूति द्वारा प्रकाशमान का अर्थ करते हैं कि—अरिहंत सर्वज्ञ वीतराग होते हैं; अठारह दोषरहित होते हैं; उनमें सातिशय केवली अरिहंत भगवान को समवसरण (बारह प्रकार की धर्म सभा) होता है। अंतरंग में अपनी ज्ञानानंदमय पवित्रता की विभूति, सो अनुभूति है; और बाह्य में तीर्थंकर पद तथा समवसरण की विभूति होती है—ऐसी दिव्य विभूति द्वारा प्रकाशमान ऐसे जिनेन्द्र पदार्थ को हमारा नमस्कार हो। जिन्होंने ज्ञानावरणादि चार कर्मों का क्षय किया है, ऐसे साक्षात् जिन अरिहंत परमेष्ठी समस्त को मेरा नमस्कार हो।

अब, भावाय=भा-अवाय; भा=प्रकाश, भा=नक्षत्र २८ हैं अथवा दिव्य प्रकाशवान चार प्रकार के देव-भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक। अवयंति—यह देव भगवान के पास समवसरण में आते हैं और चँवर ढोरते हैं, भक्ति, वंदना, नमस्कार करते हैं—ऐसे विभूतिवंत जिनेश्वर पदार्थ को नमस्कार हो।

सर्व भावान्तरच्छिदे—सर्व पदार्थ, अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय सहित हैं; स्व-रूप से हैं और पररूप से नहीं हैं; स्वतंत्र पृथक्-पृथक् हैं।—इसप्रकार जो सर्व को जानते हैं, उन अरिहंत परमात्मा को नमस्कार हो।

अब, तीसरा अर्थ है—श्री सिद्ध परमात्मपदार्थ को नमस्कार; उसमें भी जिसप्रकार अरिहंत परमात्मपदार्थ का वर्णन किया, उसीप्रकार समझ लेना चाहिये। छह द्रव्यों में सारभूत परमात्म पदार्थ है।

सिद्ध भगवान—समय। सम=शांत, उसे अय=प्राप्त किया है। जिन्होंने समयसार को प्राप्त किया है। किसप्रकार प्राप्त किया है? कि—पुण्य-पाप से हटकर सर्वथा अंतर्मुख होकर शुक्लध्यान द्वारा परमपद को प्राप्त किया है।—ऐसे सिद्ध परमात्मा हैं, उन्हें मेरा नमस्कार हो। तथा जिन्हें लक्ष में लेकर योगी-संत निर्विकल्प ध्यान द्वारा आत्मानुभव करते हैं—ऐसे योगियों को सिद्ध परमात्मा सारभूत हैं।

स्वानुभूति—निजवैभव जो तीन लोक में किसी अन्य को नहीं है, ऐसी रत्नत्रय की परिपूर्ण ऋद्धि उन्हीं को प्रगट हुई है। तथा सिद्ध प्रभु अपने अगुरुलघुगुण द्वारा प्रतिसमय अनंतगुण की ऋद्धि को अपने में प्रकाशते हैं, अपने अनंत गुण की वृद्धि-निर्मलता को धारण करनेवाले हैं। 'भू' वृद्धि के अर्थ में है तथा मंगल, निवास, सम्पदा, अभिप्राय, शक्ति, प्रादुर्भाव, गति अर्थ में भी है। स्वानुभूति में भू शब्द को पृथक् करके अनेक अर्थ होते हैं। संसार की चार गतियों से विलक्षण पाँचवीं अपरगति वह सर्वथा शुद्धदशा प्राप्त आत्मा की सिद्धगतिरूप स्वानुभूति है। ऐसे जिनेश्वर सिद्ध भगवान को नमस्कार हो।

चित्स्वभावाय—सकल विमल ज्ञानज्योति द्वारा सभी को जानते हैं, क्योंकि सकल जगत (विश्व) ज्ञानसमय में अत्यंत स्पष्ट प्रतिभास में आते हैं-ज्ञान में समा जाते हैं, ज्ञात होते हैं, ऐसा चित्स्वभाव है।

सर्व भावान्तर-अच्छिदे का दूसरा अर्थ—सर्व भावों को जानने में विच्छेद-अंतर-विग्रह होता नहीं, अथवा सर्व भावों का जिसमें विच्छेद ज्ञान नहीं होता-अतः सर्वदा, सर्वत्र, सर्वथा, सर्व को, समस्त प्रकार सहित, एक साथ (युगपत्) एक समय में जानते हैं ऐसा, अरहंत सिद्धपदार्थसमय है, उन्हीं को नमस्कार हो।

प्रथम समय में ज्ञान उपयोग और दूसरे समय में दर्शन उपयोग; इसप्रकार उनके किसी

काल दर्शन-ज्ञान का विच्छेद नहीं होता अथवा ज्ञान-सुखादि स्वरूप का कभी नाश नहीं होता—ऐसे अरिहंत और सिद्ध परमात्मपदार्थ को नमस्कार हो।

(३) अब **आचार्य परमेष्ठी को** समय पदार्थरूप से जानकर नमस्कार किया जाता है कि जो अंतरंग में शुद्धोपयोगरूप साधन द्वारा अपने निश्चयपंचाचार का पालन करते हैं तथा पाँच इन्द्रियों का दमन, नव प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन, चार कषायों को जीतना आदि ३६ गुणों के धारक हैं। सम्यग्ज्ञान समय द्वारा निज शुद्धात्म-सन्मुख सावधान रहते हैं, अरिहंत-सिद्ध आदि चेतन शुभ (पवित्र) पदार्थ में अपनी समिति=सम्यक् प्रकार से यत्नाचाररूप परिणति, उसके द्वारा आत्मस्वरूप की रमणता में बहते हैं; जीव-अजीवादि समस्त पदार्थों के भेद और स्वरूप को समझते हैं; ऐसे सम्यक्चारित्रमय पंचाचार का सम्यक् प्रकार से पालन करनेवाले योगियों में मुख्य आचार्य को समयसाररूप जानकर नमस्कार करता हूँ।

आचार्य में आठ बोल:—वे अरिहंत-सिद्ध की जाति का अंशत: स्वात्मानुभव करते हैं। अंशत: मोह-क्षोभ रहित और वीतराग विज्ञानतासहित हैं। उनमें पंच परमेष्ठी को सम्यपदार्थपना नयविभाग से लागू पड़ता है तथा समयसार अर्थात् निर्मल भेदज्ञान ज्योति द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में एक साथ आत्मा को जानते हैं और परिणमन करते हैं—ऐसे समयसार पदार्थ समय आचार्य हैं, उन्हें हमारा नमस्कार हो।—ऐसे आठ बोल आचार्य समय के हुए।

उसमें **स्वानुभूत्या चकासते**—स्व के योग्य आत्मानुभव का वैभव तथा छत्तीस गुणों से शोभायमान है-प्रकाशित है। ऐसे जो आचार्य-उपाध्याय-साधु निज शुद्धात्मा में शांति के वेदन - सहित हैं, उनमें भी साररूप छत्तीस गुणों से शोभायमान, ऐसे आचार्य को नमस्कार हो।

चित्स्वभावाय—ज्ञानसमय, ज्ञानगुण, ज्ञानस्वभावरूप परिणति, हितावह भाव को धारण करनेवाले आचार्य हैं। जिनके शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद की सुधाधारा, सहज ज्ञानधारा बहती है, ऐसे आचार्य को हमारा नमस्कार हो।

सर्व भावान्तरच्छिेद—स्व के योग्य निर्मल भावश्रुतज्ञान द्वारा सर्व को जानते हैं और स्व-समयस्थित ज्ञानधारा में विच्छेद नहीं पड़ने देते—ऐसे आचार्य समय को हमारा नमस्कार हो।

(४) अब, उपाध्याय कैसे हैं कि - समय हैं। 'समयते, श्रयते; समय अर्थात् शास्त्र-सिद्धांत, उसे प्रकाशित करते हैं और स्वानुभवप्रत्यक्ष से प्रकाशमान हैं तथा सर्वज्ञ-वीतराग कथित चेतन-अचेतन सर्व पदार्थ में प्रत्येक की स्वतंत्रता स्वरूप से अस्ति, पररूप (-परद्रव्य, क्षेत्र, काल

और भाव) से नास्ति आदि सप्तभंगी का स्वरूप बतलानेवाले और भिन्न-भिन्न जीव-अजीव सर्व पदार्थों के ज्ञाता हैं, ऐसे सिद्धांत को प्राप्त होनेवाले, सिद्धांतों के अध्ययन करने-करानेवाले उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार हो।

देखो, प्रत्येक पदार्थ और उसके गुण-पर्याय अपने स्वरूप से हैं-पररूप से नहीं हैं;—यह सम्यक् नियम और उन-उन पदार्थों का उनरूप ही होना नियत ही है; जैसे कि व्यवहार व्यवहाररूप से ही है, व्यवहार के स्थान में है तथा वह निश्चयरूप नहीं है; और निश्चय है, वह निश्चययप ही है, व्यवहाररूप नहीं है। गुण, गुणरूप है; अन्य गुणरूप नहीं है, अन्य के आधार से भी नहीं है। द्रव्य में प्रत्येक पर्याय अपने-अपने स्थान में रहकर अपने-अपने अवसर पर प्रगट होती है, उल्टी-सीधी नहीं होती, इसप्रकार क्रमबद्ध ही है; अक्रम नहीं है। सर्वज्ञ का ज्ञान ऐसा ही जानता है, इससे विरुद्ध नहीं जानता और उनका कथन करनेवाले शास्त्र भी जो पदार्थ जो पर्याय जिसरूप है, उसरूप ही कहते हैं, अन्यरूप नहीं कहते—यह नियम सर्वत्र लागू होता है।

द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों सत् हैं। जो किसी एक अंश को दूसरेरूप मानता है, दूसरे में मिलाकर खिचड़ी करता है, उसे यह खबर ही नहीं है कि-पर्यायें अस्ति-नास्ति से उनके अपने काल में नियत हैं—अनियत नहीं हैं। अतः उन्हें ऐसी खबर ही नहीं है। प्रत्येक पर्याय स्व से नियत है, पर से अनियत है; परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव से अनियत है—ऐसा न माने, वह अनेकांत के नाम से स्यादवाद को खिचड़ीवाद, संशयवाद बनाता है।

सिद्धांतज्ञ उपाध्याय में अनेक अर्थ भरे हुए हैं। जो बंध का कारण है, वह मोक्ष का कारण कदापि नहीं है। जैसे कि—आस्रव, आस्रवरूप से है और संवर-निर्जरारूप नहीं है; संवर, संवर से है, आस्रव के द्वारा कभी भी संवर नहीं होता। कर्म का उदय कर्म के कारण है, जीव के कारण नहीं है। कर्म का विपाक कर्म में है, जीव में नहीं है। इसप्रकार छहों कारक जड़कर्म के कर्म में हैं। जीव को उनसे लाभ-हानि माने, उसे अस्ति-नास्ति सिद्धांत का ज्ञान नहीं है, स्व-पर की स्वतंत्रता का भेदविज्ञान नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप अस्ति-नास्ति से स्वतंत्र ही है; परतंत्र किसी प्रकार नहीं है। मात्र निमित्त का ज्ञान कराने के लिये परतंत्रता, अकाल, अकस्मात् कहा जाता है, वह असद्भूत-व्यवहारनय की रीति है, वह परमार्थ नहीं है। **इसप्रकार जो प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय को स्वतंत्र बतलायें, उन्हें जैनशास्त्रों में उपाध्याय कहा है—उन्हें हमारा नमस्कार हो।**

(५) साधु— जो स्वानुभव-प्रत्यक्ष से प्रकाशमान चैतन्यस्वभाव के धारक हैं। सत्‌स्वरूप से, अस्ति-नास्ति से निश्चित जीव-अजीव सर्व पदार्थों के भेद को जाननेवाले हैं। इसमें मांगलिक कलश के चारों विशेषण आ गये। पुनश्च, कैसे हैं? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय से शोभायमान हैं, वे साधु समयसार हैं, परमेष्ठी हैं। ऐसे सत्यार्थ समय में स्वकाल-स्वसमयरूप रत्नत्रय में परिणमित सर्व साधुओं को हमारा नमस्कार हो। जो बाह्य में नग्न होकर शुभराग की क्रिया का पालन करें, उनकी बात नहीं है, किंतु जो शुद्धात्मा के आश्रय से निश्चयरत्नत्रय की साधना करें, उन्हें सर्वज्ञ भगवान ने साधु कहा है। व्यवहाररत्नत्रय तो असद्‌भूतव्यवहार के विषय में जाता है और वह गौण है।

अब तीन बोल रत्नत्रय के पक्ष में—अपने स्वरूप से शुद्धात्मा के आश्रय से प्रकाशमान हैं। चैतन्य और स्वस्वरूप जीव-अजीव पदार्थों के ज्ञान-श्रद्धान और स्व में एकत्व परिणमनरूप स्वसमय को करानेवाले रत्नत्रय, सो आत्मा ही है। सं=सम्यक्त्व, अय=गमन, ज्ञान, सम्यग्ज्ञान, सार=सरण, चरण, सम्यग्चारित्र—इन तीन स्वरूप रत्नत्रय को नमस्कार हो। ऐसा स्वरूप समझकर निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि और सम्यक् शुद्ध रत्नत्रय पर्याय को नमस्कार अर्थात् ऐसे आत्मद्रव्य में अभेद एकाकाररूप से ढलना, नमना, सो नमस्कार है। [निमित्त के विनय अर्थात् व्यवहार नमस्कार का राग आता है, किंतु सर्वप्रकार से राग में हेयबुद्धि और निजशुद्ध आत्मा के आश्रय से ही लाभ है,—इसप्रकार उपादेय तत्त्व में जो आंशिकतया भी वर्ते, उसे व्यवहार का सच्चा ज्ञान कहा जाता है।] इसप्रकार नमः समयसार आदि चार विशेषण आठ पदों को लागू करके नमस्कार किये हैं। सामान्यरूप से परमात्मा को, विशेषरूप से पाँच परमेष्ठी और रत्नत्रय को नमस्कार किया है।

अब, प्रथम मंगलाचरण में समयसार अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा, सर्व जीवों में सार ऐसे शुद्धात्मा, जो ज्ञानावरणीयादि द्रव्यकर्म, रागादि, भावकर्म और शरीर-वाणी आदि नोकर्म रहित ऐसे शुद्धात्मा हैं, उन्हें मेरा नमस्कार हो; उसमें सिद्ध परमात्मा और अपना आत्मा भी आ गया। मैं त्रिकाल पूर्ण शुद्धशक्तिवान हूँ—इसप्रकार निर्णय में परमात्मा का आदर करके स्वोन्मुख होकर, ध्रुव शुद्धस्वभाव का निर्मल भाव द्वारा सत्कार, आदर करता हूँ। उसे महामंगलाचरण कहा जाता है। (देखो, समयसार गाथा ३१ से ३३) निश्चय में भूतार्थ-सत्यार्थ, ऐसे निज परमार्थ को नमस्कार है। पश्चात् अरहंतादि की विनयरूप व्यवहार नमस्कार व्यवहार में सत्यार्थ कहा जाता है। निश्चय नमस्कार अंतर में शुद्ध कारणपरमात्मा को हो तो हेयरूप माने हुए शुभराग को व्यवहार नमस्कार कहा जाता है।

भावाय=द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों भावरूप पदार्थ हैं; उसमें यहाँ भावाय, द्रव्य है; चित्स्वभाव, गुण है; स्वानुभूति, पर्याय है। नमस्कार करता हूँ, वह साधकदशारूप पर्याय है और पूर्णदशारूप स्वानुभूति से प्रकाशित परमात्मभाव, वह पूर्ण पर्याय है। आत्मद्रव्य अपने सर्व भावों में ध्रुव है और वही स्थायी रहकर स्वानुभूतिरूप से स्व-परप्रकाशक ज्ञानरूप से परिणमित होता है। ऐसे शुद्धात्मा को माने, उसे पर से भिन्न स्व से अभिन्न सच्चा ज्ञान होता है।

भावाय में आत्मा सर्वथा भावरूप नहीं है किंतु कथंचित् है, कथंचित् नहीं है अर्थात् स्वरूप से ही है, पररूप से कदापि नहीं है। जिस अपेक्षा से है, उसी अपेक्षा से नहीं है—ऐसा नहीं है। जैसे कि द्रव्य अपेक्षा से प्रत्येक वस्तु नित्य ही है, अनित्य नहीं है, किंतु पर्याय अपेक्षा से भी नित्य है-ऐसा नहीं है। तो फिर कैसी है ?—कि वही वस्तु पर्याय अपेक्षा से तो अनित्य ही है—नित्य नहीं है। आपकी प्रतिसमय होनेवाली प्रत्येक गुण की उत्पाद-व्ययरूप-प्रवाहित पर्यायें भी क्रमबद्ध होने से क्रमवर्ती ही हैं, अक्रम नहीं हैं।

त्रिकाल छह प्रकार के पदार्थ भावरूप हैं; वे सत्‌रूप होने से उत्पाद-व्यय-ध्रुवता सहित हैं और पररूप से नहीं हैं—ऐसा कहने से चैतन्यपदार्थ का सर्वथा अभाव माननेवाले चार्वाक आदि मतों का निषेध हो जाता है। यह सब नित्य नहीं है, संयोग मिलने से जीव उत्पन्न होता है;—ऐसा जाननेवाला, निर्णय करनेवाला स्वयं ही ज्ञान-आनंद का अक्षय धाम है। स्वयं अपने को भूलकर जो अपना नहीं है, उसे अपना करना चाहता है, इसलिए दु:खी होता है।

प्रश्न—देह से भिन्न और ज्ञान से अभिन्न आत्मा है और वह नित्य है, उसकी पहिचान कैसे करें ?

उत्तर—'आत्मा की शंका करे स्वयं अपने आप, शंकाकार स्वयं प्रगट अचरज वही अमाप,'

अर्थात् आत्मा की पहिचान के लिये शंका करता है कि मैं नित्य नहीं हूँ, उसी में स्व अस्तित्व का नित्य सद्‌भाव प्रगट प्रसिद्ध होता है, फिर भी मानता है कि देहादि से पृथक् ज्ञातारूप मैं नहीं हूँ तो-यह तेरी आश्चर्यपूर्ण बात है। मैं नहीं हूँ, यह कथन बराबर है किंतु स्वयं किसरूप नहीं है ? शरीर, वाणी, भोजन, वस्त्रादि तथा पर जीवादिरूप नहीं है किंतु सर्व अवस्थाओं में सदा जाननेवाला साक्षी, स्व-पना में ज्ञातापना में कौन है ? मैं देह से भिन्न स्वसत्तावाला नहीं हूँ, ऐसा किसने जाना-कहाँ जाना ? अत: नित्य ज्ञातास्वरूप आत्मा जीव है, वही चैतन्य स्ववस्तु है, उसे नहीं माननेवाला स्वयं ही 'अस्तित्व' प्रगट कर रहे हैं।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने छोटी उम्र में लिखा है कि—

'करी कल्पना दृढ़ करे, नाना नास्ति विचार;
त्यां अस्ति एम सूचवे, तेज खरो निर्धार।'

'इस अर्थात् यह' ध्वनि प्रत्यक्षता, विद्यमानता को सूचित करता है। भगवान आत्मा इस रूप नहीं है तो किस रूप है ? सदा सर्वत्र जानने का कार्य करता है। जिसकी सत्ता में ज्ञान हो रहा है, वह ज्ञातास्वरूप यह आत्मा ज्ञानानंदरूप है, वही तेरी सत्ता शुद्ध चेतना धातु है। तू ही परमानंदमय सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा है। सिर्फ वर्तमान प्रगट दशा में अल्पविकास है, परंतु शक्ति में तू सदा परिपूर्ण ही है, किंचित्‌मात्र अपूर्ण नहीं है।

चित्स्वभावाय—अर्थात् आत्मा का विशेष-मुख्य गुण ज्ञान है;—ऐसे अनंत गुण स्वभाव का पिंड, वह आत्मद्रव्य है। जिसप्रकार रूपी पुद्‌गल हैं, उनमें स्पर्श-रस-गंध-वर्णादि गुण हैं; उसीप्रकार जीव अर्थात् आत्मा में ज्ञान-दर्शन-सुखादि अनंत गुण हैं। मोक्षदशा को प्राप्त सिद्ध परमात्मा हुए, उस आत्मा को समयसार कहकर उसमें चित्स्वभाव विशेषण कहा, वहाँ अपने ज्ञानादि गुणों का अभाव माननेवाले का निषेध हुआ और गुण-गुणी में सर्वथा भेद माननेवाले तथा बाह्य संयोग से-निमित्त से गुणों की उत्पत्ति माननेवाले वैशेषिक मत का निषेध हुआ; क्योंकि आत्मा नित्य स्वतः सिद्ध वस्तु है तो उसके सत्तात्मक अनंत संख्यावाले सर्वगुण भी अनादि-अनंत एवं स्वतःसिद्ध हैं। वे ज्ञानादि गुण प्रत्येक आत्मा में अपने आश्रय से स्वद्रव्य के सम्पूर्ण भाग में तथा सर्व अवस्थाओं में रहते हैं; इसलिये निमित्त से (पर से) गुण का कार्य होता है—ऐसा माननेवाले मिथ्यामत का चित्स्वभाव कहने से निषेध हो जाता है। उपचार से कहा जाता है कि—इससे इसका काम हुआ; पर से लाभ-हानि हुए; किंतु ऐसा नहीं है; वास्तव में तो उसकी अपनी योग्यता अर्थात् निजशक्ति से ही कार्य हुआ है; वहाँ निमित्त का ज्ञान कराने के लिये निमित्त से हुआ, ऐसा बतलाने की व्यवहार की रीति है।

निमित्ताधीन दृष्टिवाले मानते हैं कि—निमित्त से होता है और निमित्त के बिना नहीं होता; इसप्रकार वे सर्वत्र परतंत्रता मानकर व्यग्रता का वेदन करते हैं। गुण-गुणी को पृथक् माननेवाले संयोग (निमित्त) से गुण उत्पन्न होना मानते हैं। वे दृष्टान्त देते हैं कि—मिट्टी में गंध नहीं है; किंतु मिट्टी के कोरे घड़े में पानी डालकर देखें तो उसमें गंध आने लगेगी। वास्तव में ऐसा नहीं है, किंतु निमित्ताधीन दृष्टिवाले ऐसा मानते हैं। शास्त्र से या शब्दों से ज्ञान आता है ?—तो कहते हैं कि नहीं।

शास्त्र सुनने से या दूध, बादाम और ब्राह्मी के तेल का उपयोग करने से बुद्धि बढ़ती है अथवा चाय पीने से चेतना आती है, तो अनेकगुनी चाय पीने से केवलज्ञान हो जाना चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं है, इसलिये भगवान ने गुण–गुणी का संयोग संबंध माननेवाले को मिथ्यादृष्टि कहा है।

मेहमानों को भोजन का आमंत्रण दिया हो। आम का रस बनाने के बाद मालूम हुआ कि रस कम है। लड़के को आज्ञा दे कि—जाओ पाँच सेर आम बाजार जाकर ले आओ; तो वहाँ लड़का आम ही समझता है; यदि मिश्री लाना समझे तो वह मूर्ख माना जायेगा; उसीप्रकार प्रत्येक वस्तु उसके गुणसहित ही होती है, उसे दूसरे से गुण मानना मिथ्यामान्यता है। ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान, सो आत्मा है। आत्मा और ज्ञान, ऐसा सर्वथा भेद नहीं है; अंतर में पूर्णज्ञान शक्तिरूप से विद्यमान है। बाह्य में प्रगट दशा अति अल्प थी, पश्चात् अंतर प्रतीति और एकाग्रता द्वारा अंतर अनुभव से प्रगट दशा–पर्याय निर्मल होती है; वहाँ स्वयं अपने से विकास हुआ, तब अन्य को निमित्त कहा जाता है—ऐसा न मानकर उससे विरुद्ध माने कि अपनी योग्यता से ज्ञान नहीं होता, निमित्त चाहिये; शुभराग से, पढ़ने से सुनने से ज्ञानपर्याय आयी; ऐसा निमित्त आया तो क्रोध हुआ—ऐसा कोई माने तो वह झूठ है। यदि निमित्त से ज्ञान और भूल आदि हो तो अंतर में शक्ति ने क्या किया? वह तो अपनी योग्यतानुसार निरन्तर उत्पाद–व्ययरूप प्रगट कार्य करता ही रहता है। एक समय भी निमित्त न हो तो कार्य नहीं हो सकता—ऐसा कभी नहीं होता। इसलिये निमित्त से होता है, ऐसा माननेवाले अपने को अपनी संयोगदृष्टि से ही भूले हैं। गुण स्वयं ही अंतर से परिणमन करते रहते हैं और उस समय की योग्यता—निजशक्ति से ही बाह्य में अर्थात् प्रगट पर्यायरूप—कार्यरूप दिखाई देते हैं।

वस्तु शक्तिवान है। आत्मा अपनी ज्ञानादि सम्पूर्ण शक्तिसहित है; उस पर दृष्टि और एकाग्रता से उसमें से निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं। अज्ञानी ऐसा मानता है कि संयोग, निमित्त नहीं होते तो ज्ञान नहीं होता। हाँ, तू न होता तो नहीं होता; किंतु यह कैसे हो सकता है? एक आकाशक्षेत्र में छहों द्रव्य कब नहीं होते? नियम–सिद्धांत एक ही प्रकार का है कि पर के कारण किंचित् प्रगट नहीं होता, किंतु प्रत्येक द्रव्य में से उसी के आधार से पर्याय प्रगट होती है।

गुण–गुणी, स्वभाव और स्वभाववान अभेद हैं; मात्र संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन अपेक्षा से भेद है; गुण–गुणी प्रदेशभेदरूप से अभेद ही हैं किंतु भेद नहीं है—इसप्रकार नियतरूप से, निश्चितरूप से जाने, उसका नाम प्रमाणज्ञान है।

आत्मा अनंतगुणों का पिण्ड है; उसमें से निर्मल सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र–पर्याय कैसे

प्रगट होती है कि—'स्वानुभूत्या चकासते'—अपनी ही अनुभवरूप क्रिया से, स्वसन्मुखता से प्रकाशित होता है। यहाँ अस्ति से कहने पर किसी राग की क्रिया से, निमित्त के आश्रय से (व्यवहार के आश्रय से) निर्मलता प्रगट नहीं होती-ऐसा नास्ति का कथन आ जाता है। अहो! मुनिवरों-संतों ने वन में रहकर अद्‌भुत रचना करके धर्म को बनाए रखा है।

आत्मख्याति टीका सर्वोत्तम शास्त्र है। स्वानुभूति से ही धर्म का प्रारम्भ, वृद्धि और स्थिति होती है। व्यवहार दया, दान, व्रतादि शुभराग से पुण्य होता है; धर्म कदापि नहीं होता, तथापि कहीं व्यवहार से धर्म कहा हो तो समझना चाहिए कि—ऐसा नहीं है, किंतु जहाँ निश्चय धर्म हो, वहाँ भूमिकानुसार कैसा निमित्त होता है, वह बतलाने के लिये उपचार से ऐसा कहा है। व्यवहार का आश्रय छोड़ने योग्य है। मोक्षमार्ग के लिये एक परमार्थ, भूतार्थस्वरूप का ही आश्रय करने योग्य है—ऐसी दृष्टि और भूतार्थ का आश्रय ज्ञानी को निरंतर होता है। व्यवहार उसके स्थान में होता है किंतु वह है तो वीतरागता है-ऐसा नहीं है।

★

रात्रि-चर्चा से

अंतर स्वभावोन्मुख होना ही मार्ग है..... कोई भी तत्त्व लो-सर्वज्ञता हो या क्रमनियत पर्याय हो—किसी भी तत्त्व का सम्यक् निर्णय स्वभाव की सन्मुखता द्वारा ही होता है।

'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसे निर्णय के बल द्वारा राग से भिन्न होकर स्वभावोन्मुख हो, तभी सर्वज्ञता का और क्रमनियत पर्याय का सच्चा निर्णय होता है।

क्रमनियत पर्याय के निर्णय का फल रागादि का अकर्तृत्व है, और वह अकर्तृत्व ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता से ही होता है। जहाँ ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता न हो, वहाँ क्रमनियत पर्याय का या सर्वज्ञता का भी सम्यक् निर्णय नहीं होता।

ज्ञाता स्वयं, स्वयं अपने को जाने बिना पर का निर्णय कौन करेगा? स्वोन्मुख होकर 'मैं ज्ञान हूँ' ऐसा निश्चय किये बिना ज्ञेय की पर्याय का क्या प्रकार है, उसका सच्चा ज्ञान नहीं होता।

जिसे रागादि परभावों में कर्तृत्वबुद्धि है और राग से भिन्न ज्ञानरूप परिणमन नहीं हुआ है, तो वह अज्ञान में रहकर क्रमनियत पर्याय का निर्णय कहाँ से करेगा ? जिसे सच्चा निर्णय हो, वह तो स्वोन्मुख होकर ज्ञानभावरूप से परिणमित होगा और उसे रागादि का अकर्तृत्व होगा। अपने में ज्ञानरूप परिणमित हुए बिना तथा राग के अकर्तारूप से परिणमित हुए बिना, जिनके राग का कर्तृत्व सर्वथा छूट गया है तथा जो मात्र ज्ञानरूप हुए हैं, ऐसे भगवान सर्वज्ञदेव का सम्यक् निर्णय नहीं होता। सर्वज्ञ का निर्णय करनेवाला स्वयं ज्ञानरूप होकर वह निर्णय करता है; स्वयं रागरूप होकर वह निर्णय नहीं किया जा सकता।

ज्ञाता को जाने बिना अर्थात् स्वोन्मुख हुए बिना परज्ञेय की क्रमबद्धपर्याय का निर्णय नहीं होता और कर्तृत्व नहीं छूटता।

जब ज्ञाता को जाना अर्थात् स्वोन्मुख हुआ तब, राग से पृथक् होकर अकर्ता हुआ, तभी ज्ञाता होकर ज्ञानरूप परिणमित हुआ और तभी क्रमनियत पर्याय का निर्णय सच्चा हुआ।

मैं पर का कर्ता हूँ या राग का कर्ता हूँ—ऐसा जहाँ भाव है, वहाँ ज्ञातृत्व का भाव नहीं रहता और ज्ञातृत्व के बिना कर्तृत्व दूर नहीं होता; और जहाँ कर्तृत्व हो, वहाँ क्रमनियत पर्याय का सच्चा निर्णय नहीं होता।

इसप्रकार अंतर स्वभावोन्मुख होकर ज्ञानमयभावरूप से परिणमित होना ही तत्त्वनिर्णय का मूलमार्ग है।

सैद्धांतिक चर्चा

लेख नं० १४

(१३)

४०८—प्रश्न—क्या यह मानना भी मिथ्या है कि उपादान के कार्य के समय निमित्त की उपस्थिति न हो?

उत्तर—यह मान्यता भी मिथ्या है कि जब उपादान कार्यरूप परिणमा, तब कोई निमित्त उपस्थित नहीं था क्योंकि यह बात असंभव है। बात यह है कि निमित्त को कहीं से लाया नहीं जाता और यदि लाना भी चाहा जाये तो लाया नहीं जा सकता, क्योंकि सभी द्रव्यों क प्रतिसमय की पर्यायों का परिणमन तो बराबर हो ही रहा है, जब तक कोई निमित्त जुटाने जावेगा, तब तक तो असंख्यात समय चले जावेंगे, ऐसी स्थिति वह निमित्त जुटा कैसे सकेगा? निमित्त तो प्रत्येक पर्याय के साथ मौजूद ही रहता है। यह केवल मिथ्याभाव कर सकते हैं कि 'मैं निमित्तों को जुटा सकता हूँ। जब मेरे जुटाने से निमित्त आवेंगे, तभी मेरे उपादान का कार्य प्रकटेगा; अन्यथा नहीं प्रकटेगा' —ऐसे भाव करने पर भी निमित्त तो जो जुटने होते हैं, वे ही क्रमबद्धरूप में जुटते रहते हैं। निमित्तों में तो कोई फेरफार नहीं किया जा सकता लेकिन ऐसे मिथ्याभाव करनेवाला व्यक्ति अपने मिथ्या भावों का फल दु:ख एवं संसार-परिभ्रमण अवश्य पाया जाता है।

यह तो एक अनादि, अनंत एवं स्वाभाविक विश्व की व्यवस्था है कि छहों द्रव्य निरंतर प्रतिसमय अपने-अपने उपादान स्वरूप में परिणमते रहते हैं और छहों द्रव्यों की वर्तमान पर्यायें परस्पर एक दूसरे के लिए, कोई भावरूप और कोई अभावरूप निमित्तकारण बना करती है, जो उपचारमात्र कारण है।

४०९— श्री समयसार (गाथा ३, पृष्ठ ११) की टीका में लिखा है, 'इसलिए धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीवद्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने भी पदार्थ हैं, वे सब निश्चय से (वास्तव में) एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से ही सुंदरता पाते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार से उनमें संकर एवं व्यक्तिकर आदि सभी दोष आ जावेंगे। वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न

रहनेवाले अपने अनंत धर्मों के चक्र (समूह) को चुम्बन (स्पर्श) करते हैं, तथापि वे परस्पर (एक-दूसरे को) स्पर्श नहीं करते; वे एक-दूसरे के अत्यंत निकट एक क्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे होते हैं, तथापि सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते; पररूप परिणमन न करने से उनकी अपनी अनंत व्यक्ति (प्रगटता) नष्ट नहीं होती; इसलिए जो टंकोत्कीर्ण की भाँति (शाश्वत्) स्थिर रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य (पर से नास्तिरूप कार्य) तथा अविरुद्ध कार्य (स्व से अस्तिरूप कार्य) दोनों की हेतुता (निमित्तभाव) से सदा विश्व का उपकार करते हैं।'

जैसे, केवली के एक समय की ज्ञान की पर्याय में लोकालोक के समस्त द्रव्य अपनी समस्त पर्यायोंसहित प्रकाशित हैं, इस उदाहरण में हम देखते हैं कि ज्ञान की पर्याय केवली में हुई है और समस्त द्रव्यों के प्रमेयत्वगुण की पर्याय समस्त द्रव्यों में हुई है, दोनों के स्वतंत्र परिणमन होने पर भी ज्ञान की पर्याय के लिये समस्त द्रव्यों के प्रमेयत्वगुण की पर्याय निमित्त है और उनके प्रमेयत्व के परिणमन को केवली के ज्ञान की पर्याय निमित्त है। इसी उदाहरण के अनुसार सब जगह समझना चाहिए।

(१४)

४१०—न्यायशास्त्रों के साथ उक्त बात की संधि

न्यायशास्त्रों में वस्तु को अनेक स्थानों पर अनेक अपेक्षाओं की मुख्यता लेकर अनेक प्रकार से सिद्ध किया गया है, जैसे—

(१) जो वस्तु को सर्वथा क्षणिक मानता है, उसे बतलाया गया है कि पूर्व पर्याय, उत्तर पर्याय का कारण है और वस्तु दोनों पर्यायों में ध्रुव रहती है, इसप्रकार तीनों कालों की संधि करके वस्तु नित्य सिद्ध होती है।

(२) इसीप्रकार जो वस्तु को सर्वथा कूटस्थ नित्य मानता है, उसे सिद्ध किया गया है कि उत्पाद चूँकी व्यय का कारण है; अत: वस्तु परिणमनशील है।

(३) ऐसे ही जो केवल अद्वैत ब्रह्म को ही मानता है, अन्य निमित्तरूप वस्तु का सद्भाव नहीं मानता, उसकी दृष्टि से निमित्त सिद्ध किया गया है। और निमित्त को सिद्ध करने में यह जोर दिया गया है कि निमित्तरूप वस्तु जगत में अवश्य है, उपादान जब कार्यरूप परिणमता है, तब निमित्त होता ही है, निमित्त के बिना उपादान में कार्य नहीं हुआ करता।

(४) इसके विरुद्ध, किसी की मान्यता यह है कि जब निमित्त जुटे, तभी कार्य हो, अन्यथा

न हो। इस मान्यतावाले को यह समझाया गया है कि उपादान का कार्य उपादान से ही होता है, निमित्त से कुछ नहीं होता; जैसे ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता; ज्ञान से ज्ञान होता है, ज्ञेय तो केवल उपस्थित (निमित्तमात्र) रहता है।

(५) जो केवल दैव (होनहार) से ही कार्य की सिद्धि मानता है, उसे समझाया गया है कि अधूरी (संसारी) अवस्था में कोई भी कार्य जब हुआ करता है, तब यह संभव नहीं कि उस जाति के विकल्प न हों, अतएव इच्छा-रागरूप पुरुषार्थ का होना अनिवार्य है।

(६) ठीक इसके विपरीत, कोई पुरुषार्थ (विकल्परूप पुरुषार्थ) से ही कार्य मानता है। उसके प्रति कहा गया है कि जिस समय जो कार्य होना होगा, उस समय वह होकर ही रहेगा, कोई कितने ही विकल्प करे, कार्य वही होगा क्योंकि वह शरीर की क्रिया को आत्मा नहीं कर सकता, इसलिए शरीर की क्रियारूप हलन-चलन जीव का पुरुषार्थ नहीं है।

इसप्रकार न्यायशास्त्रों में अनेक स्थानों पर जो कथन आते हैं, वहाँ यह देखना चाहिए कि वादी की मान्यता क्या है, उस स्थान पर वादी की मान्यता के खंडन की अपेक्षा होती है। लेकिन वह स्वयं सिद्धांत से विपरीत भी नहीं होता, केवल निमित्तादि की अपेक्षा की मुख्यता के साथ सिद्धांत का सूचक होता है।

आचार्यों ने समस्त शास्त्रों और सूत्रों का सार वीतरागता कहा है; इसलिए न्यायग्रंथों का सार भी वीतराग मार्ग की श्रद्धा एवं अनुकरण कराना है, मात्र वाद-विवाद द्वारा हार-जीत करने का नहीं।

सारांश

४११—इस समस्त विवेचन का सारांश यह है कि प्रत्येक द्रव्य प्रतिसमय अपने-अपने उत्पाद-व्ययरूप परिणमन को अपने में ही निरपेक्षभाव से स्वत: करता ही रहता है। इस संबंध में श्री पंचास्तिकाय की (गाथा ६२ में) श्री अमृतचंद्राचार्यकृत एवं श्री जयसेनाचार्यकृत टीकायें दर्शनीय हैं। स्वभावक्रिया हो व विभावरूपक्रिया, प्रत्येक परिणमन पर से निरपेक्ष और स्व से सापेक्ष ही है, ऐसा अनेकांत है।

किसी समय किसी भी द्रव्य का परिणमन रुकता नहीं अथवा जो होनेवाला हो, उससे अन्यरूप भी उसे कोई नहीं कर सकता। परिणमन अपने निश्चित समय से एक समय भी आगे-पीछे नहीं होता। उस परिणमन का कार्यकारणपना भी और किसी में नहीं है, तब फिर यह जीव क्यों अपने नित्य, एकरूप, अनादि-अनंत, ज्ञायकस्वभाव को भूलकर इन परद्रव्यों में कुछ भी कार्य

करने के मिथ्या अभिप्राय को धारण कर व्यग्र होता है। वह परद्रव्य में कुछ भी करने की बुद्धि करता है तो भी चूँकि पर में कुछ भी उसके अपने अधीन होता नहीं। अत: होता वही है जो होना होता है। कभी, किसी समय इसके विकल्प के साथ, पर में होता हुआ परिणमन यदि मेल खा जाता है तो यह झट भरोसा कर लेता है कि यह परिणमन मैंने किया, इसलिये हुआ है। इसके विपरीत जब अनेक बार उसके अपने विकल्प के अनुसार कार्य नहीं होता तो दु:खी होता है लेकिन उस पर गहराई से विचार नहीं करता कि यह कार्य क्यों नहीं हुआ। प्रत्येक कार्य तभी होता है, जब उसके होने का समय आ जाता है लेकिन इस जीव को भरोसा नहीं आता क्योंकि इसकी रुचि संसार में ही लगी हुई है। अकर्ता-ज्ञाता स्वभाव सन्मुख दृष्टि और महत्ता होते ही सच्चा पुरुषार्थी बनता है।

इसलिये सबसे पहिले सब प्रकार से निर्णय करके, श्रद्धा में से यह अभिप्राय निकाल बाहर करना चाहिए कि 'परद्रव्य में मेरा किसी भी समय, किसी भी प्रकार से किंचिन्मात्र भी कोई कार्य है।' और यह अभिप्राय धारण करना चाहिए कि व्यवहार से भी परद्रव्य की किसी भी अवस्था का मैं कर्ता-हर्ता अथवा व्यवस्थापक नहीं हो सकता। 'मैं तो' मात्र अपने परिणामों का कर्ता हूँ और मेरा अनादि-अनंत एक ज्ञानमात्र ही स्वभाव है; इसलिए प्रतिसमय एक ज्ञानमात्र भाव का ही कर्ता हूँ, अन्य कोई भी भाव क्यों न हों, मैं उनका कर्ता हो ही नहीं सकता। यह भावना रहनी चाहिए कि मैं एक ज्ञायकस्वभाव में ही निश्चल रहूँ।

प्राथमिक अवस्था में अपने नित्य ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से कर्तृत्वबुद्धि का अभिप्राय तो श्रद्धा से हटता ही है, साथ-ही-साथ आंशिक ज्ञायकभाव में शांति और लीनता भी वर्तती है। और फिर जैसे-जैसे ज्ञातृस्वरूप में एकाग्रता बढ़ती जाती है। वैसे-वैसे ही वर्तन (परिणमन) में भी ज्ञायकपना ही बढ़ता जाता है और ज्यों ही पूर्ण शुद्धता प्राप्त हो जाती है, त्यों ही सर्वज्ञ-परमात्मत्व प्रकट हो जाता है।

इसलिए हे आत्मन, तू पर में फेरफार करने के निरर्थक अभिप्राय को त्यागकर अपने आप में ही संतोष को प्राप्त हो। और प्राणिमात्र भी इसी पथ के पथिक बनें। इस विषय में, (सेठी ग्रंथमाला से प्रकाशित) जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर (भाग २, पृष्ठ ३२ से ९५ तक, प्रश्न नं० ३७९ से ४३४ तक) शांतिपूर्वक पढ़ना चाहिए।

उत्तर ७ अ

प्रश्न यह था कि कार्य के होने में निमित्त कारण प्रयोजनीय है या नहीं। जिसका उत्तर देने से

पूर्व उपादानकारण और निमित्तकारण की व्याख्या करना आवश्यक है, क्योंकि इस व्याख्या में ही उक्त प्रश्न का उत्तर आ जाता है।

४१२—इस विषय में पंडित बनारसीदासजी अपने ग्रंथ 'बनारसीविलास' की (पृष्ठ २१५) 'उपादान-निमित्त की चिट्ठी' में लिखते हैं, 'प्रथमहिं कोई पूँछत है कि निमित्त कहा (क्या है) उपादान कहा (क्या है) ताको व्योरो—**निमित्त तो संयोगरूप कारण, उपादान वस्तु की सहज शक्ति।**' और इसी प्रसंग में (पृष्ठ २१६) वे यह बतलाने के लिए कि निमित्त और उपादान, **दोनों असहायरूप हैं,** आगे लिखते हैं, 'अब इनकी व्यवस्था—न ज्ञान, चारित्र के आधीन; न चारित्र, ज्ञान के आधीन, दोऊ **असहायरूप, यह तो मर्यादाबंध।**' असहायरूप का अर्थ है स्वतंत्ररूप। यहाँ चारित्र को उपादान और ज्ञान को निमित्त कहा गया है, इसकी पुष्टि के लिए 'बनारसी-विलास' (पृष्ठ २१७) दर्शनीय है।

यहाँ पर पंडितजी ने निमित्त और उपादान, दोनों को असहायरूप (स्वतंत्ररूप) कहा है और इसी असहायरूपता को वस्तु की मर्यादा बताया है। वास्तव में वस्तु की मर्यादा को कोई भी नहीं तोड़ सकता। पंडितजी अपने 'बनारसी विलास' में लिखते हैं (पृष्ठ २२२ पर) 'सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन?' देखिये, यहाँ स्पष्टरूप से कहा है कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय असहायरूप से अपने आपको साधती है, इसमें निमित्त होता है लेकिन उसके होने पर भी वह (निमित्त) उपादान के कार्य के लिए किंचिन्मात्र भी कार्यकारी नहीं है।

४१३—श्री प्रवचनसार (गाथा ६५, पृष्ठ ७७) की टीका में लिखा है, 'वास्तव में इस आत्मा के लिए सशरीर अवस्था में भी शरीर सुख का साधन हो, ऐसा दिखाई नहीं देता... असमीचीन (अयोग्य) परिणति का अनुभव करने से जिसकी शक्ति की उत्कृष्टता (परमशुद्धता) रुक गयी है, **ऐसे भी (अपने) ज्ञानदर्शन, वीर्यात्मक स्वभाव में जो (सुख का) निश्चय कारण है, परिणमन करता हुआ यह आत्मा स्वयमेव सुखत्व को प्राप्त करता है।**' देखिये, यहाँ आचार्य भगवान कहते हैं कि सशरीर अवस्था में भी जब जीव असमीचीन परिणतिरूप परिणमन करता है, तब भी उसको सुख के लिये अपना ज्ञान-दर्शन-वीर्यात्मक स्वभाव ही (सुख का) निश्चय कारण है। शरीर निमित्त होने पर भी वह सुख का कारण नहीं है, यह बताने के लिये आचार्यदेव ने 'स्वयमेव' शब्द दिया है, यह शब्द मूलगाथा तथा टीका, दोनों में आया है। 'स्वयमेव' शब्द का अर्थ प्रवचनसार (गाथा ६८) के अन्वयार्थ में (पृष्ठ ८७ पर) पंडित हेमराजजी ने 'आप ही, अन्य

कारणों बिना' किया है। इस विषय को दृढ़ करने के लिए 'आत्मा स्वयं अपने सुख-दुःख का कारण होता है, इसमें इन्द्रियों के विषय अकिंचित्कर हैं' ऐसा ज्ञान कराने को लिखा है।

४१४—श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने प्रवचनसार (की गाथा ६७) में स्वयं लिखा है, 'विसया किं तत्थ कुव्वंति' और इसी गाथा की सूचनिका (पृष्ठ ७८) में लिखा है, 'अब, आत्मा स्वयं ही सुख परिणाम की शक्तिवाला है; इसलिए विषयों का अकिंचित्करत्व बतलाते हैं' तथा इसी की टीका में लिखा है, ''इसीप्रकार, यद्यपि अज्ञानी 'विषय सुख के साधन हैं' ऐसी बुद्धि के द्वारा व्यर्थ ही विषयों का अभ्यास (आश्रय) करते हैं, तथापि संसार में या मुक्ति में स्वयमेव सुखरूप परिणमित **इस आत्मा का विषय क्या कर सकते हैं**'' इसी गाथा की टीका (पृष्ठ ८७) में पंडित हेमराजजी ने भी यही कहा है।

४१५—अब उपादान के भेद बताते हैं। श्री प्रवचनसार की जयसेनाचार्यकृत टीका में अनुवादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी (भाग १, गाथा ८, पृष्ठ २६ पर) लिखते हैं, 'यह भी इसीलिए कि उपादानकारण के सदृश कार्य होता है, ऐसा सिद्धांत का वचन है। तथा वह उपादानकारण शुद्ध और अशुद्ध के भेद से दो प्रकार का है। केवलज्ञान की उत्पत्ति में राग-द्वेष आदि रहित स्वसंवेदन ज्ञान तथा आगम की भाषा से शुक्लध्यान शुद्ध उपादान कारण है। तथा अशुद्ध आत्मा रागादिरूप से परिणमन करता हुआ अशुद्ध निश्चयनय से अपने रागादि भावों का अशुद्ध उपादान कारण होता है।'

देखिये, कार्य उपादान के अनुसार है या निमित्त के अनुसार या दोनों के अनुसार, इस विषय में सभी शास्त्रों में बताया गया है कि कार्य उपादान कारण के सदृश ही होता है। इस विषय में दिये जानेवाले अग्रलिखित आधार अवश्यमेव दर्शनीय हैं।

श्री रायचंद्रजी ग्रंथमाला से प्रकाशित हुए—

(१) समयसार पर जयसेनाचार्य की टीका (गाथा २१५, पृष्ठ ३०४)

(२) समयसार पर जयसेनाचार्य की टीका (गाथा २७२, पृष्ठ ४७५-४७६) और

(३) प्रवचनसार पर अमृतचंद्राचार्य और जयसेनाचार्य की टीका में (गाथा ६५)।

देखिये, इन सब गाथाओं में यही सिद्ध होता है कि हर समय अनादि से अनंत काल तक शुद्ध-अशुद्ध पर्यायरूप कार्य होता है, उसके लिए उपादान और निमित्त, दोनों कारण होते हैं। किंतु निमित्त कारण होने पर भी वह अपने आप (अपने उपादान) से ही स्वयमेव अर्थात् आप ही, अन्य कारणों के बिना परिणमन करता है। इस विषय में श्री समयसार (गाथा ८३) तथा श्री प्रवचनसार

की (गाथा १६२ और १६९ की) टीका उल्लेखनीय है जो पहले दी जा चुकी है, अत: वही देख ली जानी चाहिए।

४१६—निमित्त प्रयोजनीय है या नहीं—इस प्रश्न के उत्तर में, प्रवचनसार (गाथा १६०, पृष्ठ २०४) में लिखा है ''और मैं, स्वतंत्र ऐसे शरीर, वाणी तथा मन का कारक (कर्ता) जो अचेतन द्रव्य है, उसका प्रयोजक नहीं हूँ। मेरे कारक और प्रयोजक हुए बिना भी (अर्थात् मैं उनके कर्ता का प्रयोजक या उनका करानेवाला नहीं हूँ फिर भी) वे वास्तव में किए जाते हैं, इसलिए यह मैं उनके कर्ता के प्रयोजकत्व का पक्षपात छोड़कर अत्यंत मध्यस्थ हूँ।''

४१७—श्री प्रवचनसार (गाथा १६२, पृष्ठ २०६) में लिखा है, ''इसीप्रकार उस (शरीर) के कारण द्वारा, कर्ता द्वारा, कर्ता के प्रयोजक द्वारा या कर्ता के अनुमोदक द्वारा शरीर का कर्ता मैं नहीं हूँ क्योंकि मैं अनेक परमाणु-द्रव्यों के एक पिण्ड-पर्यायरूप परिणाम का अकर्ता हूँ। (इसलिए) मेरे अनेक परमाणु-द्रव्यों के एक पिण्ड-पर्यायरूप परिणामात्मक शरीर का कर्ता होने में सर्वथा विरोध है।''

इसी ग्रंथ की (गाथा १६, पृष्ठ १९) टीका में लिखा है, ''निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का संबंध नहीं है, जिससे शुद्धात्म-स्वभाव की प्राप्ति के लिए सामग्री (बाह्य साधन) ढूँढ़ने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतंत्र होते हैं।''

४१८—इस प्रश्न के विषय में यह अनेकांत सिद्ध हुआ कि निमित्तकारण ज्ञान कराने के लिए प्रयोजनवान् है। (देखिये समयसार गाथा १२ की टीका) किंतु आश्रय करने के लिए प्रयोजनवान है ही नहीं, उपादेय है ही नहीं, हेय है (देखिये समयसार गाथा ६७), निमित्त परद्रव्य है, अत: उसका आश्रय हेय है।

वर्णी दिगंबर जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित बृहद्द्रव्यसंग्रह (पृष्ठ ४८) में लिखा है, ''उसके पश्चात् यद्यपि शुद्ध, बुद्ध एकस्वभाव परमात्मद्रव्य ही उपादेय है तो भी हेयरूप अजीवद्रव्य का आठ गाथाओं द्वारा निरूपण करते हैं। क्यों करते हो? क्योंकि पहले हेय तत्त्व का ज्ञान होने पर फिर उपादेय तत्त्व की स्वीकृति-स्वीकार होता है।''

इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त परद्रव्य है, इसलिए वह हेय है परंतु उसका ज्ञान करना ही चाहिए क्योंकि उसके ज्ञान के बिना किसको हेय माना जा सकेगा? निमित्त हेय होने से ज्ञान करने के लिए प्रयोजनवान् है परंतु आश्रय करने के लिए प्रयोजनवान् नहीं है।

उत्तर ७ ब

४१९—प्रश्न यह था कि संसारी जीव की आध्यात्मिक प्रवृत्ति में (शुभ और अशुभ, दोनों में) अंतरंग एवं बहिरंग निमित्तकारण कार्यकारी है या नहीं ? इसके उत्तर में सर्वप्रथम यह ज्ञातव्य है कि यहाँ शुभ और अशुभ प्रवृत्तियों को आध्यात्मिक प्रवृत्ति कहा है, जो उचित नहीं है क्योंकि शुद्ध परिणाम ही आध्यात्मिक प्रवृत्ति है, शुभ-अशुभ तो विभाव प्रवृत्ति हैं; इसलिए वे कभी भी आध्यात्मिक प्रवृत्ति नहीं हो सकते।

४२०—अब यदि प्रश्नकार पुन: प्रश्न करें कि अंतरंग-बहिरंग निमित्त कारण कार्यकारी हैं या नहीं तो उत्तर यह होगा कि जो अंतरंग निमित्त कारण को और बहिरंग निमित्त कारण को यथार्थरूप से नहीं जानते हैं, उनके लिए उनका ज्ञान करना कार्यकारी है परंतु जो अंतरंग-बहिरंग निमित्त कारण को यथार्थ ज्ञान (-हेय-उपादेय के विवेकवाला ज्ञान) होने पर जो अंतरंग उपादान -कारण है, वह कार्यकारी है और निमित्तकारण, उपादानकारण के लिये कार्यकारी नहीं है-यह अनेकांत दृष्टि से विवेचन किया गया है।

इस विषय में समयसार की जयसेनाचार्यकृत टीका (गाथा ३, पृष्ठ ५) के अनुवाद में (भावार्थ में) ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी लिखते हैं, ''निश्चय-रत्नत्रयस्वरूप ही जीव पदार्थ सर्वथा उपादेय, कार्यकारी और परमानंद प्रदायक है। इसके विरुद्ध यह कथन, 'यह जीव मिथ्यात्वी है, यह नारकी है, यह नर है या व्रती है, सो सब **अशुद्ध जीव का स्वरूप है, अतएव हेय, अकार्यकारी और परमानंदनाशक है;** इसलिए निज शुद्धस्वरूप को ही ग्रहण करना कार्यकारी है।''

४२१—देखिये, यहाँ विकारी भाव और व्रतरूप शुभभाव, दोनों जीव के अशुद्ध स्वरूप हैं, वे निमित्त हैं तो भी वे मोक्षमार्गरूप धर्म के लिए हेय हैं, अकार्यकारी हैं और परमानंदनाशक हैं। निर्णय यह करना चाहिए कि अपना निज स्वरूप ही उपादेय है, कार्यकारी है और परमानंदप्रदायक है।

व्यवहार कहो या निमित्त कहो, उसको उपचार मानकर (श्रद्धा करके) यदि उसके द्वारा वस्तु का यथार्थ निर्णय किया जावे तो वह व्यवहार का ज्ञान परमार्थ समझाने के लिए व्यवहारनय से तो कार्यकारी कहा जा सकता है किंतु निश्चय से वह अनुसरण करने योग्य नहीं है। (देखिये, समयसार, गाथा ८ की टीका)।

जो निश्चय के समान व्यवहार को भी सत्यभूत माने, और ऐसा श्रद्धान करे कि वस्तुस्वरूप ऐसा ही है तो वह अकार्यकारी और परमानंदनाशक है, इसलिए स्पष्ट होता है कि निश्चय की अपेक्षा व्यवहार अकार्यकारी है। वह तो व्यवहारनय से, मात्र ज्ञान करने के लिए कार्यकारी कहा जा सकता है क्योंकि यदि ऐसा ज्ञान किया जाये तो व्यवहार हेय हो सकता है (शास्त्र का अर्थ करने की पद्धति का वर्णन पहले किया जा चुका है, उसे इस प्रसंग में अवश्य देखना चाहिए।)

प्रश्नकार की जो मान्यता उसके प्रश्न पर से ज्ञात होती है कि वह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान उमास्वामी, भगवान समंतभद्राचार्य, भगवान अकलंकदेव, भगवान विद्यानंदिस्वामी, भगवान नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती, भगवान नेमिचंद्र सिद्धांतिदेव, भगवान अमृतचंद्राचार्य, भगवान जयसेनाचार्य, भगवान ब्रह्मदेव सूरि, और भगवान कार्तिकेयस्वामी आदि समस्त आचार्यों से विरुद्ध है, इतना ही नहीं किंतु पूर्व के विद्वान, जैसे पंडित राजमल्लजी, पंडित बनारसीदासजी, भैया भगवतीदासजी, पंडित दीपचंदजी कासलीवाल, पंडित टोडरमलजी, पंडित जयचंदजी, द्यानतरायजी और पंडित बुधजनजी आदि से भी विपरीत है। इनमें से पंडित बुधजनजी अपने 'बुधजन विलास' (पृष्ठ ५० से ९७वें में) राग सोरठ में लिखते हैं,

जा करि जैसे जाहि समय में, जो होवत जा द्वार।
सो बनि है, टरि है कछु नाहीं, करि लीनों निरधार॥
हमकौं कछु भया ना रे, जानि लियो संसार।

देखिये यहाँ भी पंडितजी कहते हैं कि सर्वज्ञ स्वभाव के सन्मुख होकर क्रमबद्ध पर्याय को स्वीकार किये बिना किसी भी जीव की अनादि से चली आई राग की और पर की कर्तृत्वबुद्धि छूट नहीं सकती।

४२२—श्री पंडित दीपचंद्रजी कासलीवाल अपने ग्रंथों 'आत्मावलोकन' (पृष्ठ ३०) तथा 'चिद्विलास' (पृष्ठ ५३) में कहते हैं, ''और जिस काल विषैं जैसी होनी है, त्यों ही होय जो भी, सो भी निश्चय कहिए है। अवरु जिस-जिस भाव की जैसी-जैसी रीति करि प्रवर्तना है तिसी-तिसी रीति पाय परिणमै सो भी निश्चय कहिए।'' देखिये यहाँ पर भी स्पष्टरूप से वही बात कही गई है जो ऊपर कही जा चुकी है।

४२३—प्रश्न—'निमित्त होय अर्थात् निमित्त उपस्थित है' ऐसा क्यों कहते हो, 'निमित्त के प्राप्त होने पर कार्य होता है' ऐसा क्यों नहीं कहते हो ?

उत्तर—इसके उत्तर में पंडित बनारसीदासजी के 'बनारसी विलास' (पृष्ठ २२२) का यह दोहा (नं० ४) देखिये—

उपादान निज गुण जहें, तहँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परमान विधि, विरला बूझे कोय।

इस दोहे से यह सिद्ध होता है कि जहाँ-जहाँ उपादान होता है, वहाँ-वहाँ पररूप निमित्त होता ही है। यह रही भेदज्ञान की विधि, जिसे कोई विरला ही जानता है।

४२४—श्री प्रवचनसार (गाथा ९५) में तथा तत्त्वार्थसूत्र (अध्याय २, सूत्र ५३) की टीका में आचार्य पूज्यपाद स्वामी और आचार्य अकलंकदेव, दोनों ने निमित्त के लिये 'सन्निधि' शब्द का प्रयोग किया है। इसलिए हम भी इन आचार्यों के अनुसार निमित्त को 'होय', 'उपस्थित हो', 'हाजिर' और 'निकटता' आदि शब्दों के साथ कहते हैं। ऐसा कहने से निमित्त पराधीन नहीं हो जाता। निमित्त को उपादान के लिये आना पड़ता हो, यह बात नहीं है, बल्कि वे दोनों असहायरूप से स्वतंत्र हैं। 'निमित्त पाकर या निमित्त के प्राप्त होने पर कार्य होता है' इन शब्दों का प्रयोग व्यवहारनय से किया जाता है परंतु वह उपचार पूर्ण कथन है। उपचार, अनुपचार (निश्चय) को बतलाने के लिये होता है, (देखिये, नयचक्र, गाथा २८८)।

४२५—इसप्रकार व्यवहारनय से 'निमित्त प्राप्त होकर' इन शब्दों का प्रयोग हुआ हो तो भी उनका अर्थ पंडित टोडरमलजी और समयसार (गाथा ५८ से ६०) के अनुसार 'ऐसा है नहीं' किंतु निमित्तादि की अपेक्षा ज्ञान कराने के लिये उपचार कथन किया गया है। हर जगह ऐसा ही समझना चाहिए। निमित्त चूँकि ज्ञेय है। अत: ज्ञान कराने के लिये प्रयोजनवान है, उपादेय है और कार्यकारी भी है किंतु आश्रय करने के लिये वह अप्रयोजनवान् है, हेय है और अकार्यकारी है। ऐसा अनेकांत का स्वरूप है।

निमित्त को धर्म करने के लिये उपादेय (आश्रय करने के योग्य) मानने से तो व्यवहार को निश्चय मान लेने के बराबर है। ऐसी मान्यतावाले को आचार्यों ने मिथ्यादृष्टि कहा है। (देखिये, समयसार की गाथा ४१४ का भावार्थ)। मिथ्यादृष्टि को सातों तत्त्वों की भूल होती ही है। इसका विवेचन पहले कई जगह कर दिया जा चुका है, जिसे वहीं से देख लेना चाहिये।

सम्पूर्ण लेख का तात्पर्य

तात्पर्य यह हुआ कि यथार्थता, स्वतंत्रता और वीतरागता ही ग्रहण करनेयोग्य है। पर में

और शुभाशुभ आस्रवों में कर्तृत्व, भोक्तृत्व और स्वामित्व को छोड़कर ज्ञातृस्वभाव को सम्हालना चाहिए। सर्वज्ञ-वीतराग द्वारा कथित तत्त्वज्ञान से हेय-ज्ञेय-उपादेय, निश्चय-व्यवहार और निमित्त-उपादान की निश्चित मर्यादा को तथा अपना हित-अहित अपने ही द्वारा किया जा सकता है—आदि प्रयोजनीयभूत कथन को आत्महितार्थ जानकर, शुद्धनय के विषयभूत सर्वज्ञस्वभावी निज परमार्थतत्त्व का आश्रय करना चाहिए, इसी में हित और हित के उपाय हैं। पराश्रय की श्रद्धा छोड़कर, समस्त भेदों और विभावों को गौण कर प्रयोजनभूत मुख्य तत्त्व को पकड़ना चाहिये। भेदविज्ञान द्वारा अंतरंग में प्रकट अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव का आलंबन के बल से आत्मार्थी को एकांतत: आत्मोन्नति का ही प्रयास करना चाहिए।

स्वसन्मुख ज्ञातृत्व ही सार बात है और वही सच्चा पुरुषार्थ है। शुद्धि की भूमिका के अनुसार व्यवहार या निमित्त कैसे आता है। इस बात को सम्यग्ज्ञान जाने बिना नहीं रहता।

प्रत्येक जीव को अपना ही काम करके, शीघ्र संसार से अलग होकर अपने भगवान स्वभाव को प्रगटरूप में प्राप्त करना चाहिये, उसकी श्रद्धा तो निरंतर करनी ही चाहिये।

जो धर्म-जिज्ञासु मध्यस्थता से यह लेख पढ़ेंगे उन्हें सच्चा समाधान होगा।

सब मिलकर चौदह लेख हुए।

—समाप्त—

★

शुद्धदृष्टि और अनुभव के लिये क्या आवश्यक है?

श्रद्धा के एकरूप विषय में संसार, मोक्ष और मोक्षमार्ग के किसी भेद का स्वीकार नहीं है। निरपेक्ष अखंड पूर्ण स्वभावभाव का लक्ष करना, वह शुद्ध दृष्टि और श्रद्धा का विषय है। प्रमाणज्ञान में त्रैकालिक स्वभाव, वर्तमानदशा और निमित्त को जानते हैं किंतु श्रद्धा में किसी पक्ष का भेद नहीं है। परिपूर्ण एकरूप ध्रुवस्वभाव की महिमा लाकर स्वरूप में एकाग्र होने से अपूर्व शांति का अनुभव होता है। उस समय प्रमाण, नय आदि के कोई विचार नहीं होते और उस काल 'मैं इस

शांति का वेदन करता हूँ'—इसप्रकार पर्याय पर लक्ष नहीं होता। यह सब सुनकर कोई ऐसा माने कि इसप्रकार ध्यान में एकाग्र होकर बैठ जाना चाहिये; किन्तु भाई! हठ से ध्यान नहीं होता। ध्यान के लिये पात्रता और सत्समागम से अभ्यास करना चाहिये। राग-द्वेष महान पाप नहीं है, किंतु तत्त्वार्थ संबंधी मिथ्या अभिप्राय महान पाप है; वह पाप किसी अन्य उपाय से दूर नहीं होता, किंतु विपरीत अभिप्रायरहित सर्वज्ञ-कथित तत्त्वार्थों की दृढ़ श्रद्धा करना चाहिये। इसलिये हित-अहितरूप क्या है, उन भावों को पहचान कर उपादेय का आदर करके उस हितस्वरूप में ढलने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। पर के द्वारा मेरा भला-बुरा हो सकता है; मैं पर का, शरीर का, वाणी का कुछ कर सकता हूँ अथवा पराश्रय से लाभ मानता है, शुभराग से धर्म मानता है तो वह सब मिथ्या मान्यता है। उस अनादिकालीन भूल को सुधारने के लिये भेदविज्ञान द्वारा स्वानुभव करना होगा।

अपना हित-अहित अपने ही द्वारा होता है—उसका ज्ञान-स्वानुभव अथवा आत्मप्रतीति द्वारा होता है और उसके लिये स्वयं अच्छे जिज्ञासु बनकर तत्त्वनिर्णय का पुरुषार्थपूर्वक उद्यम करना चाहिये। कर्म मार्ग देंगे या अमुक काल आयेगा, तब अंतर में ज्ञान का उद्यम हो सकेगा—ऐसी पराधीनता कभी है ही नहीं। अपूर्व तत्परता से दिन-रात अपने परमार्थ का चिंतवन किये बिना उसके द्वार नहीं खुलते।

पुण्य के कारण पैसा, मकान, मान-प्रतिष्ठा की प्राप्ति हुई हो तो वह धूल के समान है, उससे आत्मा को क्या लाभ? पर के अभिमान द्वारा ज्ञाता स्वभाव;की दृढ़ता का नाश हो रहा है। अपना मूल स्वभाव तो संयोग और विकार रहित, पर के कर्तृत्व-भोक्तृत्व से रहित स्वाश्रित है; किंतु मूढ़ जीव पुण्य की रुचि द्वारा उसका तिरस्कार करता है। लोग पुण्य को भला मानते हैं, किंतु बंधनकर्ता तथा दु:खदाता को भला कैसे माना जा सकता है? बाह्य प्रवृत्ति, देह की क्रिया आत्मा के आधीन नहीं है; किंतु अंतर में जड़कर्म को निमित्त बनाकर निमित्ताधीन किये गये शुभभाव भी आत्महित के लिये भला नहीं है। आत्मानुभव के लिये मन के संबंध से विचार किये जाते हैं, वे भी रागमिश्रित भाव होने से अभूतार्थ हैं; श्रद्धा के अनुभव में उनका अभाव होता है। गुण गुणी भेद का राग अंतरस्थिरता में सहायक नहीं है तो फिर बाह्य में कौन-सा साधन सहायक होगा?

★

आनंद का सरोवर

चैत्र कृष्णा त्रयोदशी के दिन पूज्य स्वामीजी थाननगर में पधारे; वहाँ उल्लासपूर्ण स्वागत के पश्चात् करीब एक हजार स्त्री-पुरुषों की सभा में मंगल-प्रवचन करते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा कि—आत्मा का स्वभाव ज्ञानानंद से परिपूर्ण है, वह मंगल है और उसकी भावभासनरूप प्रतीति करने से मिथ्यात्वरूपी ममकार (अहंकार) गलता है तथा आत्मसुख की प्राप्ति होती है, वह मंगल है। जिसे जगत के किसी पदार्थ की आवश्यकता न हो, ऐसा आनंद आत्मा में भरा है; उसमें अंतर्मुख होने से सुख प्रगट होता है और दु:ख दूर होता है, उसका नाम अपूर्व मंगल है। ऐसे आत्मस्वभाव की बराबर पहचान, सो मंगल है। 'मंग' अर्थात् पवित्रता-सुख, उसे 'लाति' अर्थात् लाये, वह मंगल है, अर्थात् आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता, वह मंगल है।

आचार्यदेव कहते हैं कि अरे जीव! ऐसा तेरा स्वभाव है, उसे जाने बिना तूने संसार में अनेक दु:ख सहन किये हैं—

कहे महात्मा, सुण आतमा कहुं वातमां वीतक खरी,
संसार सागर दु:खभर्यामां, अवतर्यो फरी फरी।

भाई, अज्ञानभाव से संसार में भव कर-करके तूने जो दु:ख भोगे, उनकी कथा लम्बी है; इसलिये अब तो आत्मा की दरकार करके सत्समागम कर।

जिसप्रकार लैंडी पीपर में चरपराहट भरी है, उसीप्रकार आत्मा में आनंद भरा है। अंतर्मुख सत्समागम द्वारा उसमें दृष्टि करने से वह अनुभव में आता है। आनन्द का सरोवर तुझमें ही भरा है, उसमें से आनंद का प्रवाह बहता है। अहा, प्रत्येक आत्मा स्वभाव से आनंदसागर है, वह बहुत सत्समागम से समझ में आता है। आनंद का सरोवर ऐसा जो अपना स्वरूप, उसे जानने से स्वसन्मुखता द्वारा ऐसा सुख प्रगट होता है कि जो इन्द्र के वैभव में भी नहीं है। जिसमें सिद्ध समान आनंद का अंश प्रगट हो, ऐसा यह मंगलाचरण है। मंगल बाह्य पदार्थों में नहीं है किंतु वह तो अपने ही आत्मा का ऐसा निर्दोष पवित्र भाव है कि जिससे दु:ख दूर होकर सुख की प्राप्ति होती है। आनंद सरोवर ऐसे आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान की दृढ़तारूप भाव, वह आनंद मंगलरूप है।

(-इसप्रकार पूज्य स्वामीजी ने प्रात:काल मंगल-प्रवचन किया और दोपहर को हाईस्कूल के हॉल में प्रवचन करते हुए कहा:—)

इस सौराष्ट्र में विहार का मंगलाचरण हो रहा है। मंगलाचरण में समयसार का १३८वाँ श्लोक पढ़ा जा रहा है। उसमें आत्मा को जगाते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—अरे जीवो ! अनादि संसार से लेकर अज्ञान के कारण राग में ही निजपद मानकर तुम सो रहे हो... अब जागो... और समझो कि आत्मा तो चैतन्यस्वरूप है, राग उसका स्वरूप नहीं है। प्रत्येक पर्याय में चैतन्य की और राग की भिन्नता है, उसका भेदज्ञान करो तो अंतर में अतीन्द्रिय आनंद का प्रवाह बहता है।

अपना वास्तविक शुद्धस्वरूप क्या है, उसकी प्रतीति के बिना अनंत काल से संसार में भटककर दुःख भोग रहा है, वह कैसे दूर हो—उसकी यह बात है—

अनंतकाल थी आथड्यो, विना भान भगवान।
सेव्या नहि गुरु संत ने, मूक्युं नहि अभिमान॥

ज्ञानी गुरु क्या कहते हैं और उनका कहा हुआ आत्मतत्त्व क्या है ? उसे जाने बिना जीव संसार में अनंत काल से भटक रहा है। सत्समागम का पात्रतापूर्वक सेवन किये बिना चैतन्य का स्पर्श अर्थात् अनुभव नहीं होता। अपूर्व सत्समागम के बिना चैतन्य का पता नहीं चल सकता।

जीव को संसार में किसी ने भटकाया नहीं है किंतु स्वयं अपनी भूल से ही भटक रहा है। जीव ने अनंत काल में दूसरा सबकुछ किया—व्रत, तप किये, पूजा-भक्ति के शुभभाव किये, किंतु शरीर से और राग से भिन्न अपना स्वरूप क्या है—उसकी सूझ नहीं पड़ी; इसीलिये वह दुःखी हुआ है, आत्मसिद्धि की पहली ही गाथा में श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत,
समजाव्युं ते पद नमुं श्री सद्गुरु भगवंत।
गुणवंताज्ञानी... अमृत वरस्या छे पंचमकाल मां...

भगवान आत्मा देह में लिपटा हुआ किंतु उससे भिन्न सदा अरूपी चैतन्यमूर्ति है। जिसप्रकार भिन्न-भिन्न रंग के वस्त्रों में लिपटी हुई सुवर्ण-मुद्रा उस वस्त्रों से भिन्न ही है, उसीप्रकार चैतन्यमूर्ति आत्मा सुवर्ण-मुद्रा के समान है, वह इन स्त्री-पुरुषादि शरीररूपी वस्त्रों में लिपटा है, किंतु वह शरीररूप कभी नहीं हुआ है। ऐसे शरीर तो अनंत बार प्राप्त हुए और चले गये, किंतु आत्मा तो ज्यों का त्यों ही है।

इस संसार में मनुष्यभव मिलना भी दुर्लभ है, और उसमें आत्मा की प्रतीति करके जन्म-मरण का अंत आ जाये, वह तो अपूर्व वस्तु है। श्रीमद् राजचंद्र मात्र सोलह वर्ष की आयु में कहते हैं कि—

बहु पुण्य केरा पुंजथी शुभदेह मानवनो मल्यो,
तोये अरे भवचक्रनो आंटो नहीं अेके टल्यो।
सुख प्राप्त करतां सुख टले छे लेश अे लक्षे लहो
क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो ?

अरे भाई! ऐसा मनुष्यभव प्राप्त हुआ, उसमें अपने चैतन्यतत्त्व का मूल्य तो समझ ले—उसकी महिमा तो जान! तू जगत के पदार्थों की महिमा करने में डूब गया, किंतु अपने चैतन्यपदार्थ की अचिंत्य महिमा तूने कभी नहीं जानी। तुझमें प्रभुता भरी है, अतीन्द्रिय आनंद का सरोवर तेरे अंतर में छलक रहा है, सर्वज्ञता की अपार शक्ति तुझमें विद्यमान है; किंतु अपनी प्रभुता को भूलकर तू अज्ञान अंधकार में फँस रहा है। आचार्यदेव ऐसे जीवों को जगा रहे हैं कि अरे जीवो! तुम जागो.. और अंतर में अपने शुद्धतत्त्व का अवलोकन करो! तुम्हीं में अतीन्द्रिय आनंद और सर्वज्ञता भरी हुई है, उसे देखो।

वर्तमान में श्रीसीमंधर परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञपद पर विराजमान हैं; वे परमात्मा वीतराग विज्ञान के पुंज हैं; उनके शरीर से ॐकार ध्वनि खिरती है; उसे सुनने के लिये जंगल के सिंह, चीते भी आते हैं। उनके समवसरण में आठ वर्ष के राजकुमार और राजकन्याएँ भी चैतन्य की प्रतीति करते हैं। चैतन्य में अचिंत्य शक्ति है, किंतु उसे अपना विश्वास नहीं आता। हे भाई! अनादि से एक क्षण भी तूने अपने आत्मा के स्वभाव का स्पर्श नहीं किया है; अब यह सत्य समझने का तथा सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने का अवसर आया है, तो भेदज्ञानरूपी धागा आत्मा में पिरो ले। जिसप्रकार धागा पिरोई हुई सुई खोती नहीं है, उसीप्रकार सम्यक्श्रुतज्ञानरूपी धागा पिरोया हुआ आत्मा भवभ्रमण में नहीं भटकता; वह अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करता है। एकबार भी यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले तो अनंत काल के भवभ्रमण का अंत आ जाये।

जिसे संसार का नाश करके भगवान होना हो, उसके लिये यह बात है। हे आत्मा! जो तेरी वस्तु नहीं है, उसमें मूर्च्छित होकर तू पड़ा है, यह तेरा पागलपन है–मूर्खता है। यह रागादि भाव तेरा निजपद नहीं है, यह तो अपद है–अपद है... अरे जीव! चेत! चेत!! यह शरीरादि तो जड़ रजकणों के पुतले हैं।

रजकण तारा रखड़शे, जेम रखड़ती रेत,
पछी नरतन पामीश क्यां? चेत चेत नर चेत?

हे जीव! तू जाग-जाग! अंतर में आनंद से परिपूर्ण पवित्र धाम की ओर किंचित् दृष्टि डाल! अपने चैतन्य को भूलकर तू कहाँ सो रहा है? विकार के पीछे अतीन्द्रिय आनंद का रस पिण्ड भगवान आत्मा विद्यमान है, उस पर दृष्टि डाल! उसमें ही दृष्टि लगाना सच्चा कर्तव्य है। उस पर दृष्टि डालते ही तू निहाल हो जायेगा... आत्मा में ऐसी महान शक्ति है कि—जागृत हो तो आठ वर्ष की आयु में भी सर्वज्ञपद प्राप्त कर ले!—ऐसे आत्मा की प्रतीति करना, वह धर्म की रीति है। इसलिये हे जीव! एकबार तू जाग.. एकबार तू आश्चर्यपूर्ण उत्सुकता से जाग और जागकर अंतर में भरे हुए आनंद सरोवर को देख... अपने शुद्ध चैतन्यपद का अवलोकन कर... जिससे तेरे चैतन्य भंडार के ताले खुल जाएँ... तेरी मुक्ति का द्वार प्रकाशित हो उठे!

जैनदर्शन शिक्षण-वर्ग

सदैव की भाँति इस वर्ष भी प्रौढ़ आयु के जैन बन्धुओं के लिये मिती श्रावण सुदी ५, तारीख १२-८-६४ से चालू होगा। धर्म जिज्ञासुओं को परम उपकारी पूज्य सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के दिगम्बर जैनधर्म के मूल सिद्धांतों के रहस्यमय प्रवचनों का भी लाभ मिलेगा। युवक वर्ग भी लाभ ले सकते हैं। जिनकी आने की इच्छा हो, वे पहले से सूचित करें।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

✻ बम्बई नगरी का प्रतिष्ठा महोत्सव ✻

जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के संक्षेप समाचार गतांक में दिये गये थे, विशेष समाचारों के इच्छुक साधर्मी बंधुओं के लिये संक्षेप में निम्न प्रकार हैं:—

बम्बई नगरी के भक्त और भारत के अनेक साधर्मीजन जिसकी राह देखते थे, वह प्रतिष्ठा महोत्सव मनाने का धन्य अवसर आया।

बैसाख सुदी २–३ को परमोपकारी पूज्य स्वामीजी की अमृत जयंति का हीरक महोत्सव सानंद पूर्ण हुआ।

बैसाख सुदी पंचमी की रात्रि को कुमारिका बहनों द्वारा पंचपरमेष्ठी भगवंतों की मंगल स्तुति पूर्वक जिनेन्द्र गर्भकल्याणक की पूर्व क्रिया के दृश्य हुए थे, भरतक्षेत्र में २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान के जन्म की बात जानकर इन्द्रसभा में देवों को आनंद, ५६ कुमारिका देवियों द्वारा माता वामादेवी की सेवा, देवों द्वारा माता–पिता का बहुमान, माता के १६ स्वप्न आदि महामंगलमय दृश्य देखकर, तुरंत तीर्थंकरदेव का भरतक्षेत्र में अवतार होगा, यह जानकर सभी को आनंद होता था। मानों चतुर्थ काल में हम बैठे हैं, उससमय के मंगलमय कल्याणक हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, ऐसी भावना हृदय में जाग उठी थीं।

बैसाख सुदी ६ सवेरे माताजी के १६ स्वप्नों के सर्वोत्तम फल का वर्णन, ५६ कुमारिका देवियों के द्वारा सेवा–भक्ति–आनंदकारी चर्चा, विश्वसेन महाराज का राजदरबार, इन्द्रदरबार आदि के भाववाही दृश्य हुए थे। शाम को जिनमंदिर में वेदी–कलश, ध्वजशुद्धि।

बैसाख सुदी ७ मंगमसर बदि ११ के रूप में शोभित था वो सुप्रभात अंनेरा उत्साह से सुशोभित था, भगवान पार्श्वनाथ का जन्म होते ही दशों दिशायें आनंद मंगल के नाद से गर्ज उठीं, चहुँओर प्रकाश, हजारों भक्तों के हृदय हर्ष से नृत्य करने लगे, मानों हम पंचम काल में नहीं हैं किंतु चतुर्थ काल में उत्सव देख रहे हैं, यह बम्बई नगरी नहीं है किंतु वाराणसी है, ऐसा भासने लगा, मध्यलोक की क्या बात, ऊर्ध्वलोक के इन्द्र और इन्द्राणियाँ भी आनंद विभोर हो रहे थे, सब जन्मोत्सव का हर्ष व्यक्त कर रहे थे.... ५६ कुमारिका देवियाँ जन्म बधाई के मंगलगीत पूर्वक अपना आनंद व्यक्त कर रही थीं; उत्तम बाजे बज रहे थे, सौधर्म इन्द्र ऐरावत आदि सहित जन्मोत्सव मनाने के लिये भरतक्षेत्र में आ पहुँचे। जब इन्द्राणी शचिदेवी ने बाल तीर्थंकर को हाथ में लेकर–

भक्तिपूर्वक इन्द्र के हाथ में दिया, सहस्रनेत्र से स्वयं अद्‌भुत महिमा सहित बाल प्रभु को देखने लगा, तब हजारों जन पार्श्वकुंवर को भक्ति से देखकर आनंद से जय-जयकार करने लगे... अहा; तीर्थंकर जन्मे... और उन्हीं का दर्शन हुआ... धन्य... उस कल्याणक प्रसंग की क्या बात!!.... ऐरावत ऊपर भगवान बाल तीर्थंकर के जन्माभिषेक के लिए सवारी अद्‌भुत थी, बम्बई के रास्ते में दिन में भीड़ रहती है, वहाँ हाथी और अन्य अनेक साज सहित हजारों की संख्या में विराट जुलूस साथ में पूज्य कानजीस्वामी पैदल चल रहे थे, पार्श्वकुंवर जन्माभिषेक की भव्य सवारी के समय ७-७ मंजिलों की अट्टारियां दर्शकों की अपार भीड़ से उभर रही थीं। अहो! जिस नगरी में तीर्थंकर भगवान का जन्म हो, उस नगरी की क्या बात!! जीवंत सादा हाथी उपरांत ऊँचे-ऊँचे ऐरावत की सात सूंड सहित कला नक्काशी से बहुत शोभित थे, जुलूस आजाद मैदान में मेरुगिरि पर पहुँचे, वहाँ १५ हजार जितनी मानवमेदिनी के बीच पार्श्व तीर्थंकर का इन्द्रों द्वारा जन्माभिषेक हुआ... मेरुपर्वत के चारों ओर हर्षानंद का कोलाहल हल्ला हो रहा था... मोहमयी नगरी को 'वाराणसी' बनने का सौभाग्य प्राप्त होने से बम्बई नगरी आज गौरव अनुभव कर रही थी। चारों ओर भक्तजन विविध भक्ति कर रहे थे... और जन्म बधाई के मंगल गीत गाते-गाते मेरु तीर्थ की प्रदक्षिणा करते थे, अभिषेक विधि के बाद होनहार २३वें तीर्थंकर का पूजन करके इन्द्रों ने भक्ति प्रदर्शित की, तांडवनृत्य भी किया।....

बैसाख सुदी ८ का दिन पार्श्वभगवान के दीक्षा कल्याणक का था। सवेरे राजसभा में पार्श्वकुमार के सामने अयोध्यानगरी के राजदूत उत्तम भेंट दे रहे हैं, राजकुमार ने पूछा—अयोध्या की शोभा कैसी है? तब राजदूत ने उस नगरी का आश्चर्यकारी वर्णन किया, उस नगरी में हो चुके श्री ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों की महत्ता का वर्णन किया.... जो सुनते ही पार्श्वकुमार का चित्त पलट गया, अरे! ऋषभादि तीर्थंकरों के आयुष्य तो बहुत लंबे थे, अब तो आयुष्य बहुत अल्प है... संसार के भोगों के लिये मेरा जन्म नहीं है। किंतु मुझे मेरी परमात्मदशा साधना है, राजभोगों में जीवन बिताना मुझे रुचिकर नहीं... इस वैभव से अनेक गुने भोग वैभव अच्युतादि स्वर्ग में अनेकबार इस जीव ने देखे हैं किंतु उनसे कभी तृप्ति नहीं हुई, अब तो निर्ग्रंथ मुनिदशा प्रगट करके चैतन्य का अतीन्द्रिय आनंद में झूलते-झूलते केवलज्ञान प्रगट करूँगा... ऐसी दृढ़ता और अतिशय वैराग्य प्रगट होते ही लोकांतिकदेव आ पहुँचे... पार्श्वकुमार ने दीक्षा के लिये वनगमन किया, दरिया किनारे सुंदर वन में दीक्षाकल्याणक मनाया गया.... अहा,.....वैराग्य से भरे हुए वातावरण

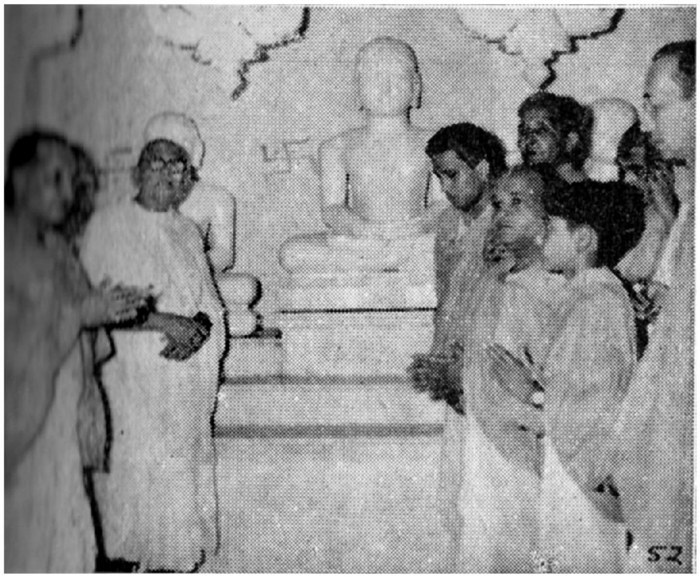

दादर जिनमंदिर में जिनेन्द्र भगवंतों की पावन प्रतिष्ठा

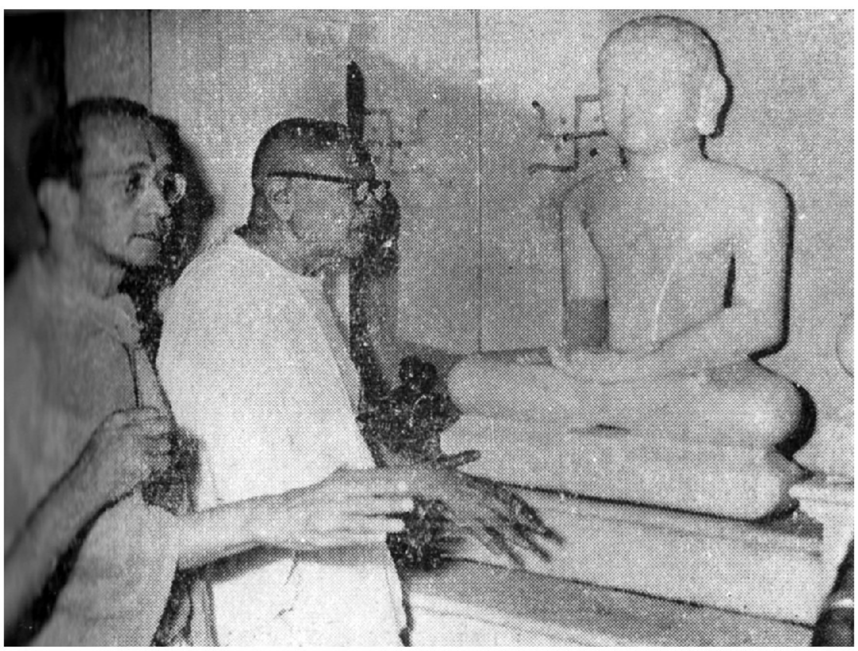

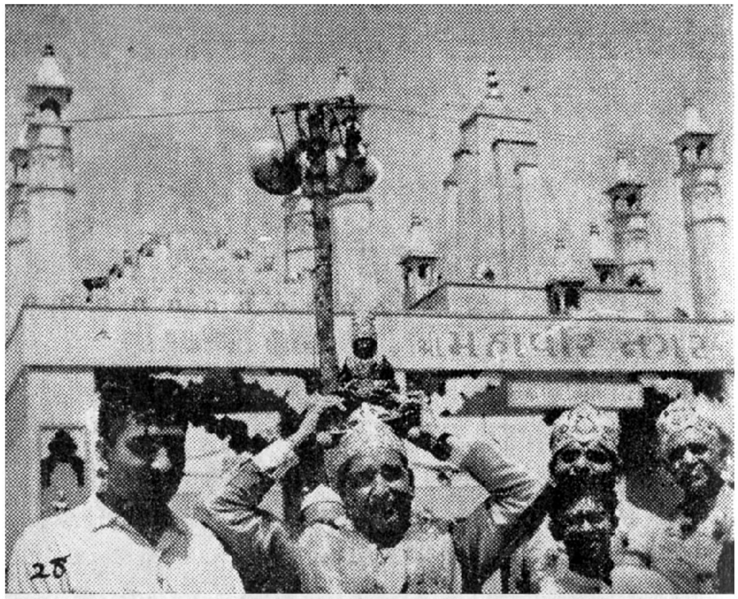

पार्श्व प्रभु का जन्म कल्याणक

जन्म कल्याणक के समय इन्द्रों की आनंद महिमा 'कहत क्यों मुख से बने'

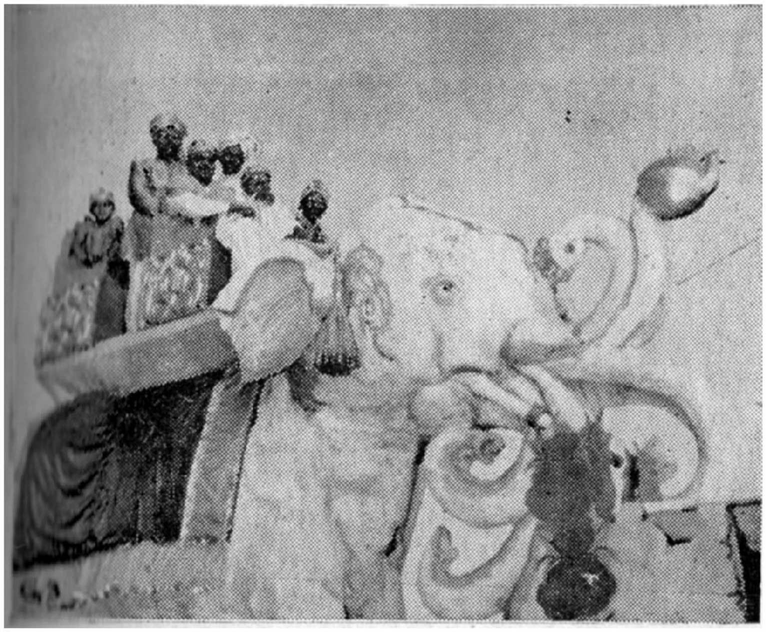

जन्म कल्याणक महामहोत्सव मनाने हेतु गजराज ऐरावत भी आया था

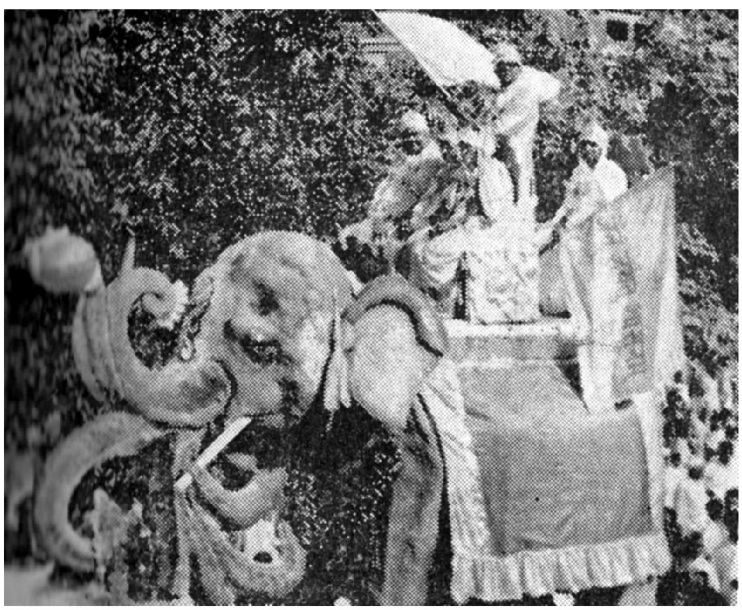

यह सात सूंडवाला सुशोभित गजराज है जो कलाकारों के द्वारा बनाया गया निर्जीव, किन्तु
भगवान के जन्म कल्याणक के महान अवसर पर वह भी मानो
चेतनवंत बनकर आनंद से भाग लेने जा रहा है।

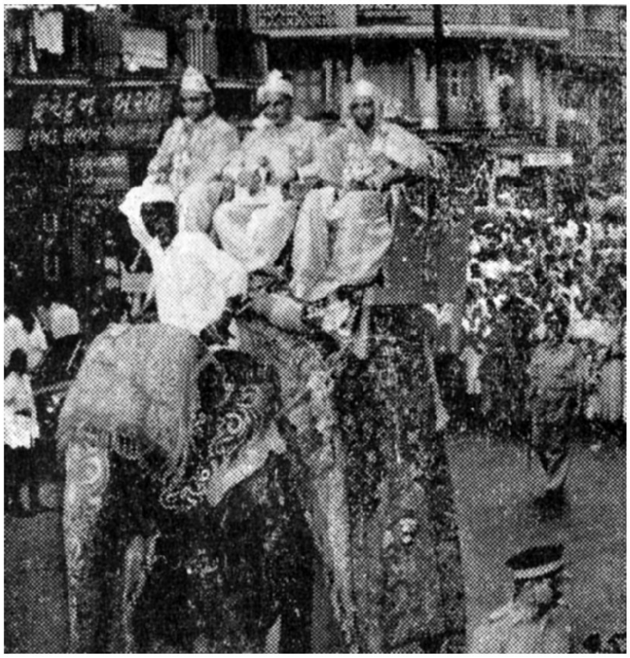

जन्म कल्याणक के जुलूस में सजीव हाथी पर पार्श्वकुमार सहित सौधर्म इन्द्र (तीसरा हाथी आया था, किंतु जुलूस के लिये मंजूरी नहीं मिली।)

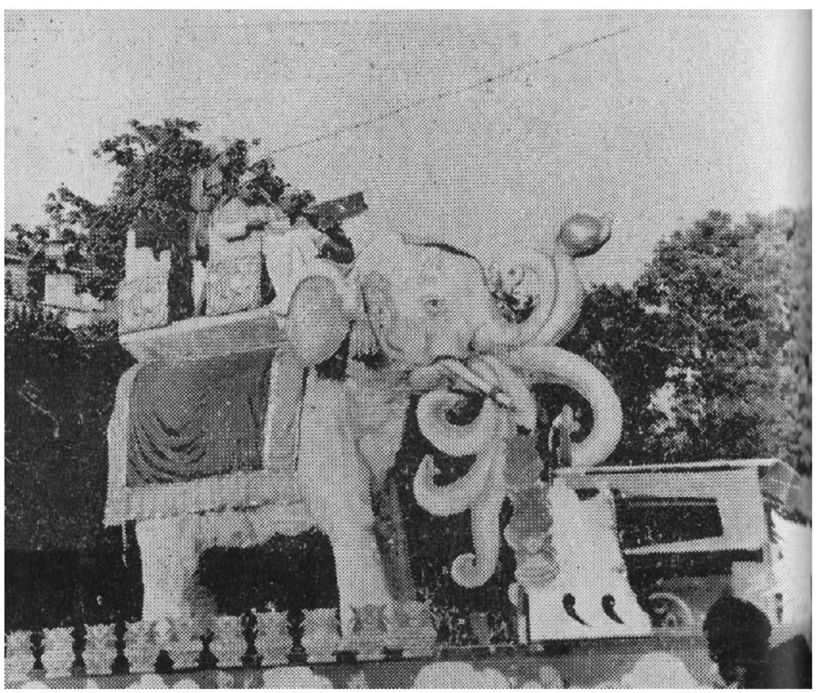

अहा! प्रभु के कल्याणक के समय निर्जीव वस्तु भी मानो सजीव बनकर भगवान का अभिनंदन कर रही है।

राज दरबार में पार्श्वकुमार को महा मूल्य (अनर्घ) भेंट देते हुए एक महाराजा

हाथी के ऊपर वन विहार के लिये आये हुये श्री पार्श्वकुमार महीपाल नामक तापस (कमठ का जीव) को हिंसा से बचने का सम्बोधित कर रहे हैं।

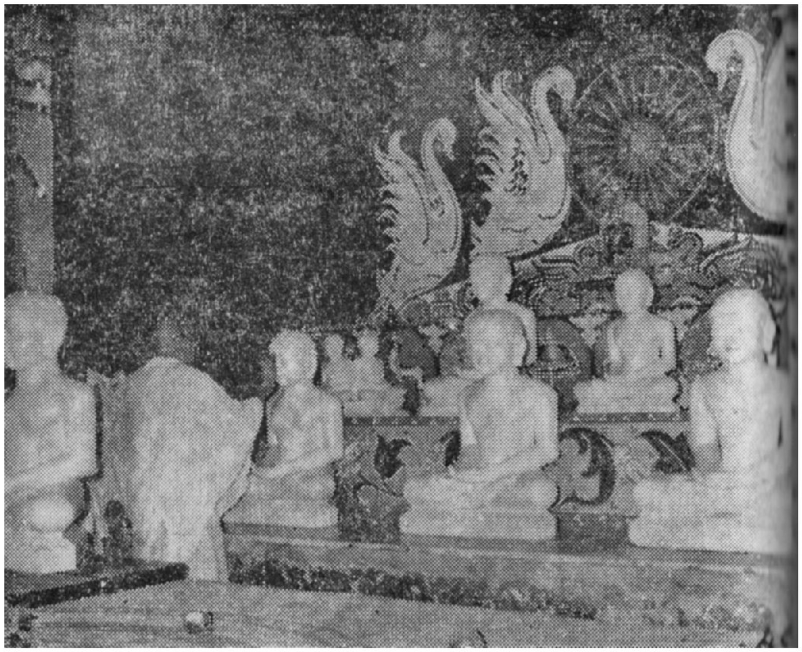

पूज्य कानजी स्वामी भी भक्तिपूर्वक जिनबिम्बों के ऊपर अंकन्यास विधि कर रहे हैं।

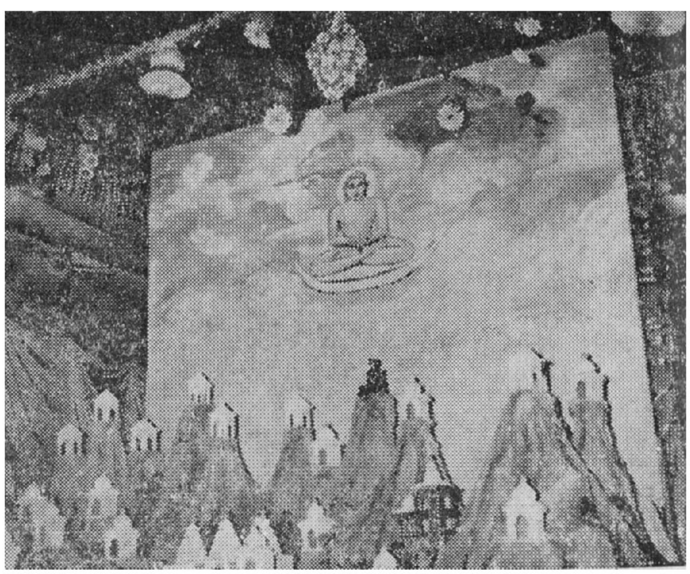

निर्वाण कल्याणक के समय सम्मेदशिखर की रचना का दृश्य

समवसरण में सीमन्धरनाथ की प्रतिष्ठा हो रही है

समवसरण में सीमन्धरनाथ भगवान की कुन्दकुन्दाचार्य वंदना कर रहे हैं
इस रूप में प्रतिष्ठा होने के बाद श्री कानजी स्वामी आदि सब अर्घ चढ़ा रहे हैं।

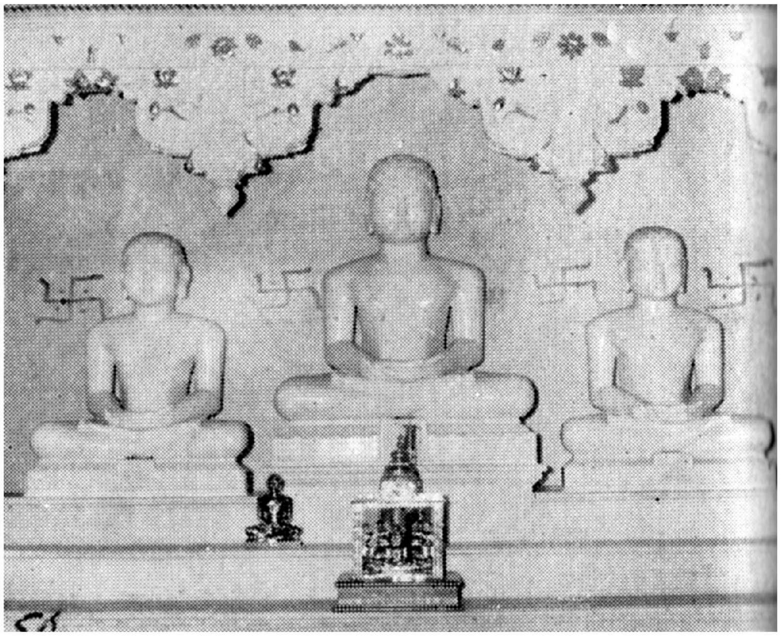

दादर जिनमंदिर में विराजमान महावीरादि जिनेन्द्र भगवन्त

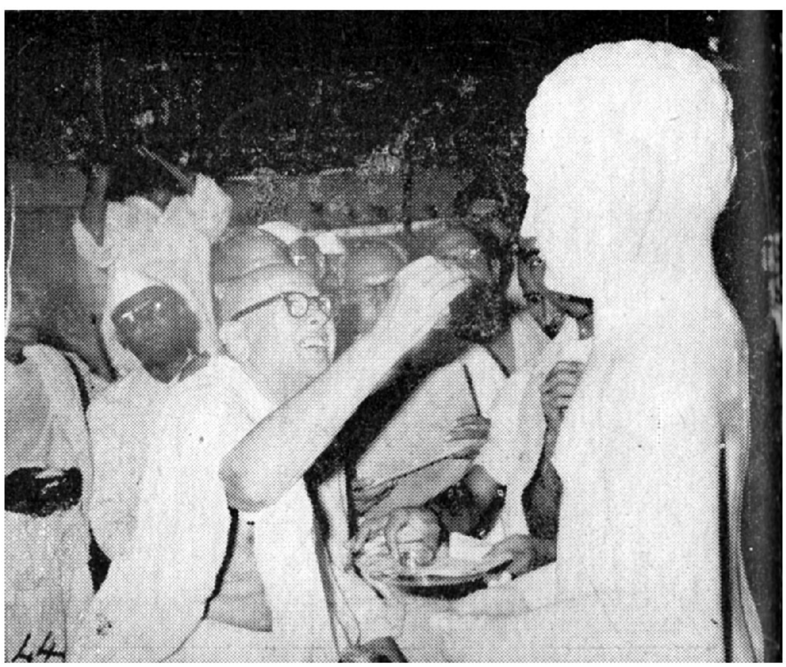

भगवान.. और.. भक्त (परम अद्‌भुत प्रभुता प्रभू तिहारी खरी)

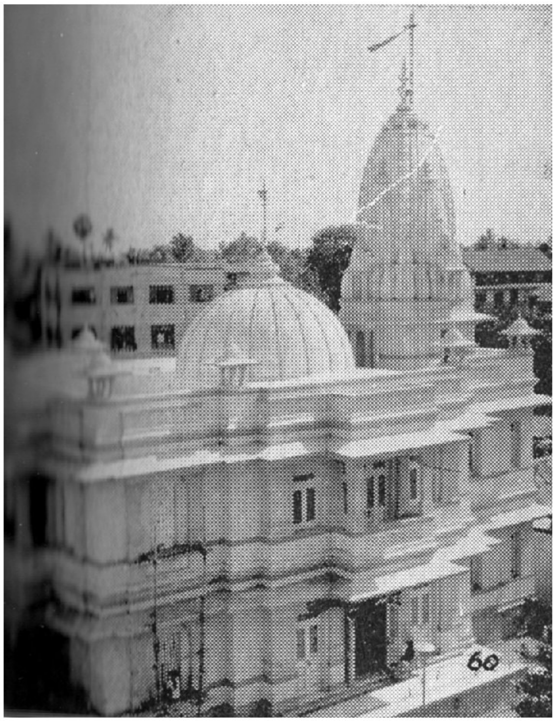

दादर का
७५ फुट
उन्नत
जिनमंदिर

एवं

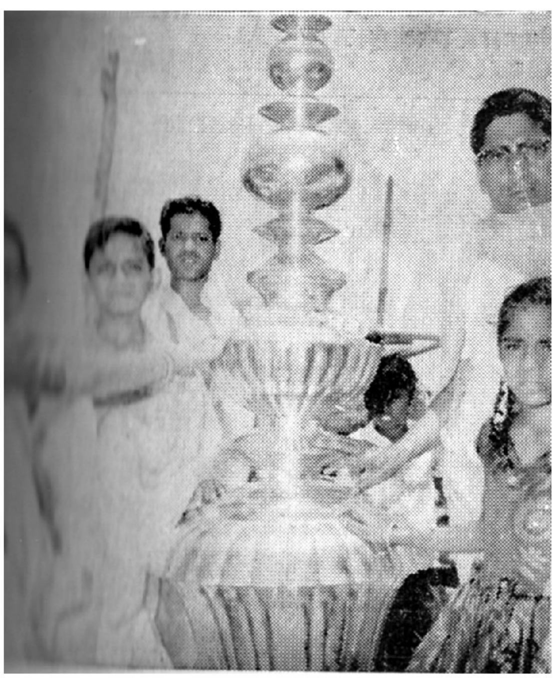

मंदिरजी पर
सुशोभित
७५ इंच का
सुवर्ण
कलश

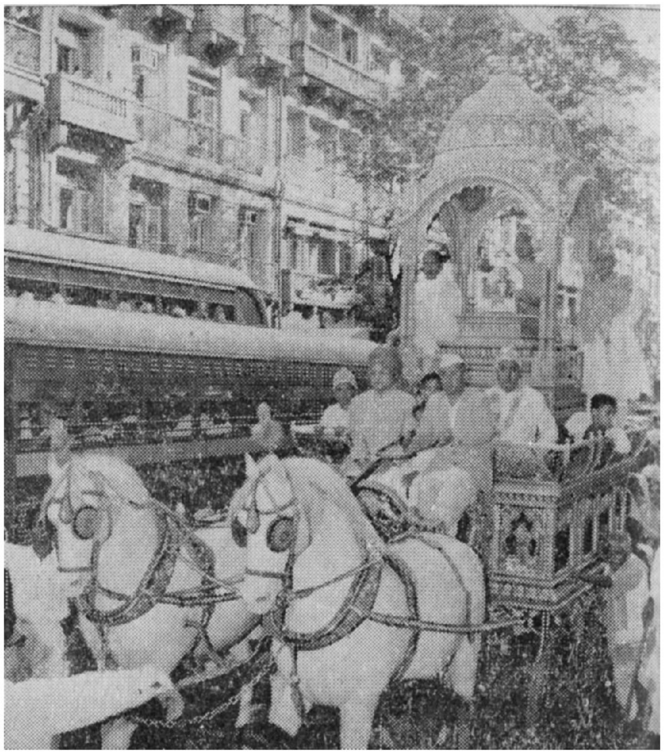

महोत्सव की अपार उत्साह पूर्वक जिनेन्द्र रथयात्रा

भगवान की रथयात्रा में

के बीच हजारों दर्शकगण इस धन्य प्रसंग की अनुमोदना कर रहे थे। चारों ओर बेशुमार भीड़ थी, भगवान की दीक्षा के बाद स्वामीजी ने मुनिदशा की महिमा समझानेवाला प्रवचन किया, एक भाई जो बाल ब्रह्मचारी थे, ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली, रात्रि पार्श्वप्रभु के दस पूर्वभवों के दृश्य सहित वर्णन, अहा,.... कमठ ने दस, दस भव तक घोर उपद्रव किया और भगवान ने क्षमा से सहन किया... दस भवों तक क्रोध और क्षमा के बीच लड़ाई चली, अंत में क्रोध के ऊपर क्षमा की विजय हुई, यह प्रसंग हरेक प्राणी को बोधदायक था; संसारी जीवन में क्रोध अेर क्षमा के बीच सदा टक्कर चलती ही है... अज्ञानी को ज्ञायकस्वभाव के प्रति अरुचि और कर्तृत्व की रुचि होने से परद्रव्य को अनुकूल प्रतिकूल मानकर क्रोध से उपद्रव करते ही रहते हैं और ज्ञानी साधक जीव क्षमा से सहन करते ही आते हैं... आराधक को उपद्रव हो या पुण्य का संयोग हो, अपनी पवित्र आराधना में अडिग रहते हैं। अंतिम भव में आत्मध्यान में मग्न पार्श्वनाथ मुनिराज के ऊपर कमठ के जीव संवरदेव ने पत्थर, अग्नि, धूलि और पानी द्वारा घोर उपसर्ग किया, धरणेन्द्र पद्मावती ने आकर भक्ति से छत्रधर के उपसर्ग दूर किया, कमठ के जीव ने पश्चाताप किया, यह भक्तिमय प्रसंग देखकर; क्रोध के ऊपर क्षमा की विजय देखकर सभा में भारी हर्ष छा गया, पार्श्वप्रभु के जय-जयकार से सभा मंडप गूँज उठा। (यह प्रसंग डॉ० सौभाग्यमलजी प्रमुख श्री अजमेर भजन मंडली; श्री बाबूलाल झांझरी, तथा श्री पंडित नाथूलालजी (इंदौर) ने जमाया था) घोरातिघोर उपद्रव होने पर भी क्षमावीर पारसनाथ आत्मसाधना से न डिगे, जरा भी न डिगे, न कमठ के प्रति क्रोध किया, न धरणेन्द्र के प्रति राग। आपने तो वीतराग होकर सर्वज्ञपद साध लिया और उत्तम क्षमा का सर्वोत्तम आदर्श जगत के सामने रख दिया....

बैसाख सुदी १० सम्मेदशिखरजी महान तीर्थ की रचना की थी। ऊपर २५ टोंक बड़ी सुहावनी दिखी रही थीं, निर्वाण कल्याणक मनाया गया, सबसे ऊँची सुवर्णभद्र टोंक के ऊपर प्रभु पारसनाथ अर्हत्पद में विराजते थे; योग निरोध करके अयोगी हुए... शिखरजी के ऊपर इन अयोगी भगवान के दर्शन का दृश्य अनोखा भाव प्रेरक था; जरा सी बात जितने में तो भगवान मोक्ष पधारे-इन्द्रों ने निर्वाणकल्याणक महोत्सव मनाया। उत्तम, मंगल और शरणदाता, धर्मनायक तीर्थंकरदेव के पंच कल्याणक जगत का कल्याण करो... पंच कल्याणकविधि पूर्ण होने पर भगवान महावीर-सीमंधर आदि जिनेन्द्र भगवंतों को दादर जिन मंदिर में विराजमान किये-भक्तों को अपार आनंद हुआ, बड़े हर्ष उमंग सहित वेदी प्रतिष्ठा हुई, मंदिरजी की ऊपर की मंजिल पर समवसरण की भव्य

आकर्षक रचना है, सोनगढ़ के माफिक यहाँ भी सीमंधरनाथ के समवसरण में कुन्दकुन्दाचार्य दर्शन कर रहे हैं, यह दृश्य बड़ा सुशोभित हो रहा है।

शेठ श्री मणिलाल जेठालाल तथा उन्हीं के भाई, तथा शेठ श्री नवनीतलाल सी. जौहरी, श्री पूरणचंद्रजी जोहरी आदि ने भक्ति सहित भगवंतों की प्रतिष्ठा की थी। उस समय भी श्री कानजीस्वामी भक्तिपूर्वक भाग ले रहे थे। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का ऐसा जिन महिमा दर्शक महानतम महोत्सव वह बम्बई नगरी का एक विशिष्ट प्रसंग था। भगवंतों की प्रतिष्ठा, शास्त्रजी की, आचार्यदेव श्री कुन्दकुन्दाचार्य की प्रतिष्ठा के बाद मंदिरजी ऊपर कलश-ध्वज भी बड़े उत्साह-आनंदपूर्वक चढ़ाये गये थे, ७५ फुट ऊँचे जिनालय के ऊपर ७५ इंच ऊँचा=सवा छह फुट का सुवर्णमय कलश जगमगा उठा... और पवित्र धर्म क्षेत्र में जैनधर्म ध्वज लहराने लगा.... अनेक भक्तगण भक्ति से नृत्य करने लगे।

दोपहर में शांतियज्ञ, आभार विधि बाद महामहोत्सव की पूर्णता के हर्षोपलक्ष में जिनेन्द्र भगवान की महान रथयात्रा निकली जो देखते ही बनती थी, घड़ी भर तो बम्बई शहर को रोक दिया, जहाँ से रथयात्रा चली वहाँ सैंकड़ों वाहन-व्यवहार रुक जाते थे और बड़ी उत्सुकता से सब भगवान की रथयात्रा का अवलोकन करते थे। हीरक जयंती महोत्सव संबंधी संक्षेप समाचार ऑल इंडिया रेडियो बम्बई केन्द्र से गुजराती तथा मराठी भाषा में प्रसारित किया गया था, जन्मकल्याणक का भव्य जुलूस आदि की फिल्म भारत सरकार के इंडियन न्यूज रिव्यू रूप में ली गई थी; आजाद मैदान में बहुत विशाल सभा मंडप, कल्याणक विधिमंडल और महावीर नगर की विशाल रचना देखकर २०० वर्ष पूर्व जयपुर में श्री पंडित टोडरमलजी, श्रीरायमल्लजी, दीवान श्री रतनचंदजी आदि द्वारा इन्द्रध्वज पूजा समारोह नाम के अतिशय विशाल मेले का आयोजन याद आता था। जिनेन्द्र भगवान के प्रतिष्ठा का ऐसा महोत्सव मनाने के लिये बम्बई नगरी के मुमुक्षुओं को धन्यवाद।

सोनगढ़ समाचार

पूज्य स्वामीजी सुख शांति में विराजमान हैं। बम्बई में उत्सव के बाद श्री नेहरूजी के अवसान के योग में शोक मनाकर कार्यक्रम स्थगित कर दिये गये थे। जेठ बदी ८ को स्वामीजी दिन में सोनगढ़ पधारे। प्रवचन में सवेरे पंचास्तिकाय तथा दोपहर में समयसार पढ़ने में आता है। जेठ सुदी ५ (श्रुतपंचमी) पर्व हरसाल माफिक मनाया गया था।

भोपाल—तारीख १४-६-६४ श्रुतपंचमी का महान पर्व उत्साहपूर्वक मनाया गया था। सामूहिक रूप से श्रुत की बड़ी पूजन की गई बाद श्री फूलचंदजी सि० शास्त्री द्वारा प्रवचन हुआ, इस पर्व का इतिहास बताते हुए, इस बात पर जोर दिया कि हमें नियमित स्वाध्याय द्वारा स्वतंत्र वस्तु स्वरूप को यथार्थतया जानकर आत्मकल्याण की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। .....शास्त्र भंडार खोलकर सफाई आदि की। रात्रि को पंडित फूलचंद्रजी, श्री पंडित कमलकुमारजी, श्री पंडित अभयचंद्रजी, श्री प्रो० हीरालालजी के भाषण हुए।

डालचंद जैन

मंत्री श्री दिगम्बर जैन पंचायत कमेटी-भोपाल

सूचना

समयसार जी कलश टीका छप रही है, श्रावणमास के जैन शिक्षण वर्ग आसपास छपकर तैयार होगी, प्रश्नोत्तरमाला भाग १ से ३ तैयार है, अपूर्व अवसर नामक महान काव्य पर पूज्य स्वामीजी के अद्‌भुत प्रवचन तथा श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत द्वादशानुप्रेक्षा, दूसरी आवृत्ति एक पुस्तक के रूप में छप गई है। मूल्य १-०, पोस्टेज, ४० पैसे होगा।

आध्यात्मिक पद

(राग - ख्याल काफी कानडी)

[कविवर भूधरदासजी]

तुम सुनियो साधो! मनुवा मेरा ज्ञानी।
सत्गुरु भैंटा संशय मैंटा, यह निश्चय से जानी,
चेतनरूप अनूप हमारा, और उपाधि पराई। तुम० ॥१ ॥
पुद्गल म्यान असी सम आतम यह हिरदै ठहरानी,
छीजौ भीजौ कृत्रिम काया, मैं निर्भय निरवानी। तुम० ॥२ ॥
मैं ही दृष्टा मैं ही ज्ञाता मेरी होय निशानी,
शब्द फरस रस गंध न धारक, ये बातें विज्ञानी। तुम० ॥३ ॥
जो हम चीन्हां सो थिर कीन्हां, हुए सुदृढ़ सरधानी,
'भूधर' अब कैसे उतरैगा, खड्ग चढ़ा जो पानी। तुम० ॥४ ॥

भावार्थ—भेदविज्ञानी स्वयं अपने को शिक्षा देता है और नित्य ज्ञानस्वभाव के आश्रय से नि:शंकता का स्मरण करता है—कि हे साधु! हे भले मनवाले आत्मा! आत्मा का असली स्वरूप तो मिथ्यात्व रागादि तथा अज्ञान से रहित ज्ञानमय है। सत्स्वरूप सत्गुरु का समागम हुआ और सर्व संशय नष्ट हो गया। भेदज्ञान द्वारा मैंने निश्चय से जाना कि नित्य, अतींद्रिय, ज्ञानमय, अनुपम चैतन्यस्वरूप वही मेरा रूप है—उसके अतिरिक्त जो है, वह उपाधि है—परवस्तु है।

जैसे म्यान से तलवार भिन्न है, उसीप्रकार पुद्गलमय शरीर से आत्मा सदा भिन्न है तथा अपने त्रिकाली ज्ञानानंदमय शरीर से अभिन्न है। यह बात मुझे हृदय से ही जँच गयी है। शरीर तो नकली वस्तु है, उसका संयोग-वियोग, बिखरना—एकत्रित होना स्वभाव है। वह छेदा जाय, भेदा जाय अथवा उसका चाहे जो होवे तो भी मैं तो नित्य निर्भय हूँ, मुक्त स्वभावी हूँ। मैं ही ज्ञाता-दृष्टा हूँ और यही मेरी निशानी—मेरा लक्षण है।

शब्द, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण को धारण करनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं तो जड़ देहादि से भिन्न हूँ, पर का कर्ता, भोक्ता या स्वामी नहीं हूँ—ऐसा स्व-पर को भिन्न लक्षण द्वारा जानकर स्वसन्मुख हुआ अर्थात् मैंने अपने आत्मा को आत्मा में नि:सन्देहरूप से स्थिर किया। ऐसा दृढ़ श्रद्धावंत हुआ हूँ।

कविश्री कहते हैं कि जैसे तलवार को पिलाया हुआ पानी नहीं उतरता उसीप्रकार मैं नित्य निर्भयस्वभावी नि:शंक भेदज्ञान द्वारा जागृत हुआ तो अब पर में एकत्वबुद्धि क्यों धारण करूँ? चैतन्य से विरुद्ध का आदर क्यों करूँ? अर्थात् देहादि तथा औपाधिक भावों का कर्ता, भोक्ता या स्वामी कैसे होऊँ? मैं तो ज्ञाता ही हूँ।

नया प्रकाशन

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) तीसरी आवृत्ति

छपकर तैयार हो गया है। तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से मांग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकांतपूर्वक नयार्थ भी दिये हैं और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा-सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्व प्रेमियों को यह ग्रंथ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र सं० ९००, मूल्य लागत से बहुत कम मात्र ५) रखा गया है। पोस्टेज आदि अलग।

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (चतुर्थ आवृत्ति)

१८००० बुक छपकर बिक चुकी हैं, समाज में धर्म जिज्ञासा का यह नाप है। शास्त्राधार सहित संक्षेप में खास प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञान की जानकारी के लिये यह उत्तम मार्गदर्शक प्रवेशिका है। जैन जैनेतर सभी जिज्ञासुओं में नि:संकोच बांटने योग्य है। इंग्लिश भाषा में भी अनुवाद कराने योग्य है। जिसमें अत्यंत स्पष्ट सुगम शैली से मूलभूत अति आवश्यकीय बातों का ज्ञान कराया गया है। बढ़िया कागज, छपाई, सुंदर आकार, पृष्ठ संख्या १०५, मूल्य- सिर्फ २५ नये पैसे, पोस्टेजादि अलग।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

— नया प्रकाशन —

श्री समयसारजी परम अध्यात्म-शास्त्र

(तीसरी आवृत्ति)

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत सर्वोत्तम अध्यात्मशास्त्र, श्री अमृतचंद्राचार्य कृत संस्कृत टीका सहित हिन्दी अनुवाद। प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़।

यह अद्वितीय जगतचक्षु समान आध्यात्मिक ग्रन्थाधिराज है, परिभाषण पद्धति से जो सूत्र रचना हो, वह सर्वोत्तम मानी जाती है। जैसी मूल सूत्रों की सर्वोत्तम रचना श्री कुन्दकुन्दाचार्य की है, ठीक वैसी ही आत्मख्याति नामक टीका सर्वोत्तम है, वीतरागता, और स्वतंत्रता ग्रहण करने की रुचि से पढ़ने से उसका रसास्वाद आता है।

जिसमें ज्ञानी-अज्ञानी जीवों का स्वरूप, भेदविज्ञान, नवतत्त्वों का रहस्य खोलनेवाले सात अधिकार, कर्ताकर्म, सर्वविशुद्धज्ञान, अनेकांत, ४९ शक्ति, मोक्षमार्ग का स्वरूप, साध्यसाधक भाव का स्वरूप आदि का सुस्पष्ट वर्णन है। उस पर सातिशय प्रचंड निर्मल तत्त्वज्ञान के धारक अजोड़ महर्षि श्री अमृतचंद्राचार्य की सर्वोत्तम संस्कृत टीका है। अत्यंत अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) जीवों को भी जिसमें समझाया गया है। हिन्दी अनुवाद, तीसरी आवृत्ति, इस ग्रंथ में गाथाएँ लाल स्याही से छपी हैं, कुछ गाथाएँ सुनहरी कलर में हैं। बढ़िया कागज पर सुंदर ढंग से छपने पर भी मूल्य लागत से भी बहुत कम रखा है, सभी जिज्ञासु यथार्थतया लाभ लेवें, इसी भावनावश इस ग्रंथाधिराज का मूल्य मात्र ५) रुपया रखा है। पोस्टेजादि अलग। पृष्ठ संख्या ६४१ बड़े आकार की है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
पोस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

[नोट—यह शास्त्र बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, भोपाल, सागर, उज्जैन, विदिशा, लश्कर, इन्दौर, उदयपुर, गुना, अशोकनगर, मदनगंज आदि गाँवों में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा प्राप्त हो सकेंगे।]

नया प्रकाशन

योगीन्द्रदेव आचार्य योगसार दोहा, और भैया भगवतीदासजी तथा कविवर श्री बनारसीदासजी कृत निमित्त-उपादान दोहा, तत्त्वज्ञान समझने में तथा याद करने में बड़ी सुगम और रोचक होने से थोक मंगाकर सभी जिज्ञासुओं में बाँटने योग्य है, नित्य स्वाध्याय करने योग्य है। बहुत बड़े टाइप व बढ़िया कागज में छपा हुआ है। पृष्ठ २४, मूल्य ०-१२ नये पैसे, पोस्टेज अलग।

मंगाने का पता—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

टेपरील रिकार्डिंग द्वारा प्रवचन प्रसार

सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान एवं मोक्षमार्ग को स्पष्टतया प्रकाश में लानेवाले, निश्चय व्यवहारनय के विभाग सहित, स्वामीजी के प्रवचन तथा जैन शिक्षण वर्ग के लिये आमन्त्रण आने पर प्रचारकजी को भेज दिया जाता है, वर्तमान में इनका कार्यक्रम उदयपुर, भिंडर, जावद, नीमच, बड़नगर, नारायणगढ़ आदि १५ गाँवों का है। पत्र आने पर क्रमशः भेजे जायेंगे।

पत्र व्यवहार का पता—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
(प्रवचन प्रचार विभाग)
पोस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

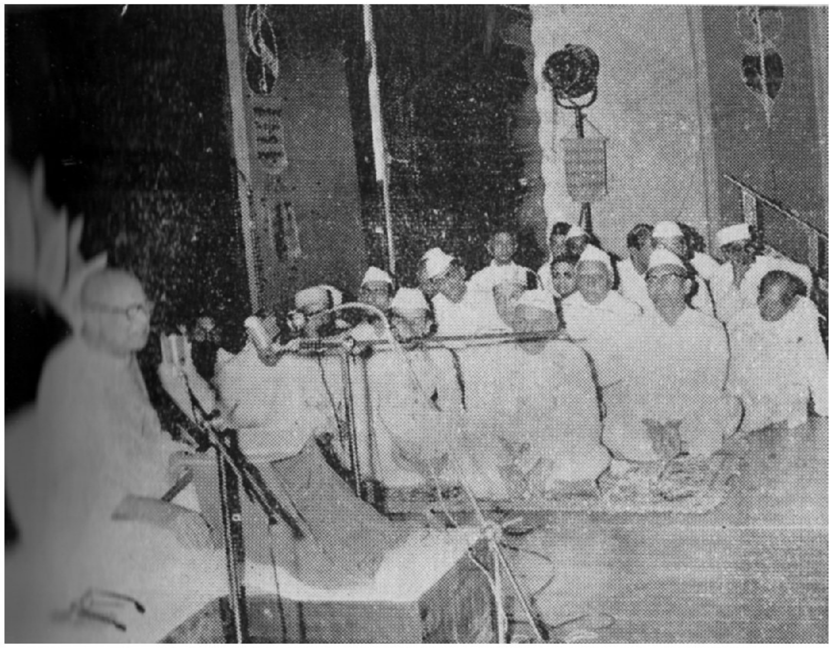

माटुंगा (बम्बई) सन्मुखानंद हॉल में स्वामीजी का प्रवचन

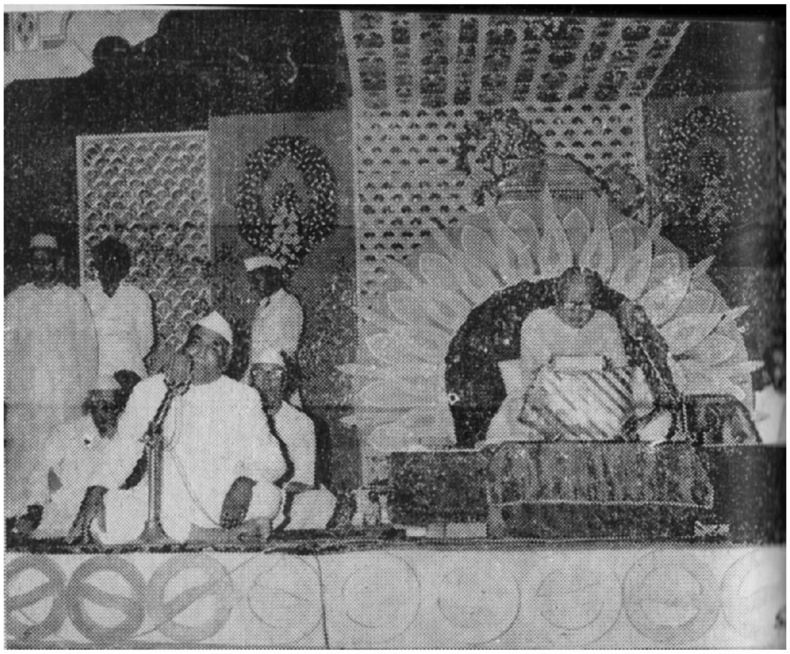

समकित सावन आयो...... आज मेरे.......

मध्य भारत के आयोजन और विकास केन्द्र के प्रधान श्री मिश्रीलालजी गंगवाल

महावीरनगर में स्वामीजी के प्रवचन के बाद भजन गा रहे हैं, साथ में सभाजन भी गा रहे हैं।

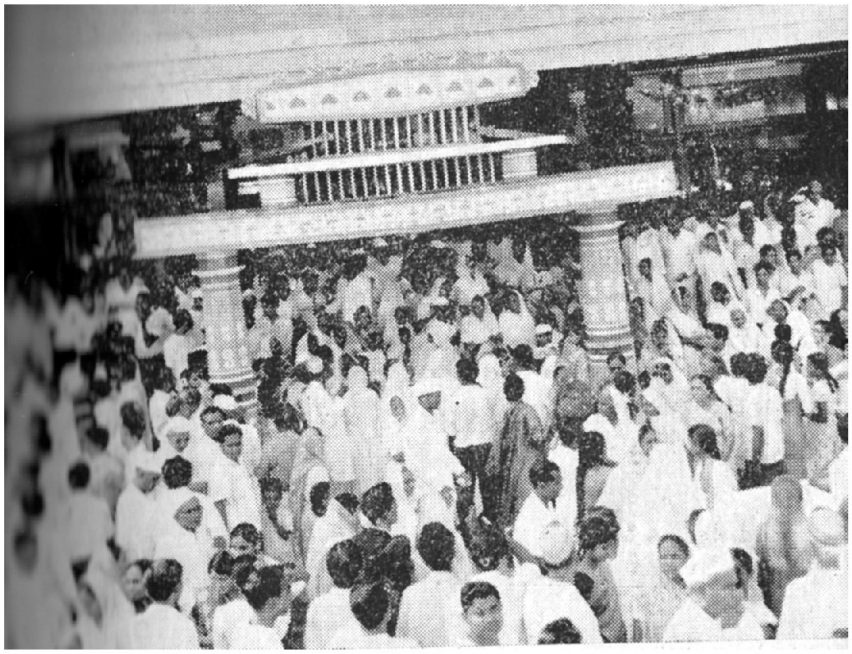

माटुंगा—सन्मुखानंद हॉल में प्रवचन पूर्ण होने के बाद

महावीरनगर पंडाल में सभा का दक्षिण भाग

पार्श्व प्रभु की दीक्षा के बाद समुद्र (महासागर) में
केश विसर्जन करनेवाला इन्द्र

बैसाख सुदी ११ प्रतिष्ठा विधि के बाद दादर में प्रीतिभोज

बम्बई नगरी में हीरक जयंती के शुभ अवसर पर पूज्य श्री कानजी स्वामी को वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय श्री लाल बहादुरजी शास्त्री, अभिनंदन ग्रंथ समर्पण कर रहे हैं। (तारीख १३-५-६४)

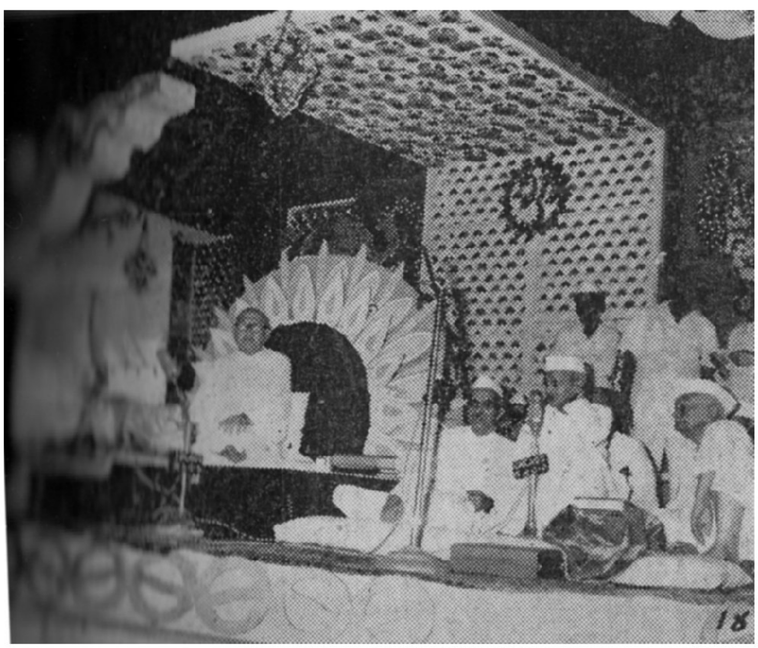

ग्रंथ अर्पण करने के बाद शास्त्रीजी ने करीब १५ मिनट भाषण किया, वहाँ शास्त्रीजी के अंतिम शब्द ये थे।

''मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, मैं फिर एक बार पूज्य स्वामीजी के प्रति अपना आदर सम्मान और श्रद्धांजलि प्रगट करता हूँ और यह निवेदन करता हूँ कि जो रास्ता अहिंसा, शांति, चारित्र एवं नैतिकता का आप दिखाते हैं उस पर यदि हम चलेंगे तो उसमें हमारा भी भला होगा, समाज का व देश का भी भला होगा।''

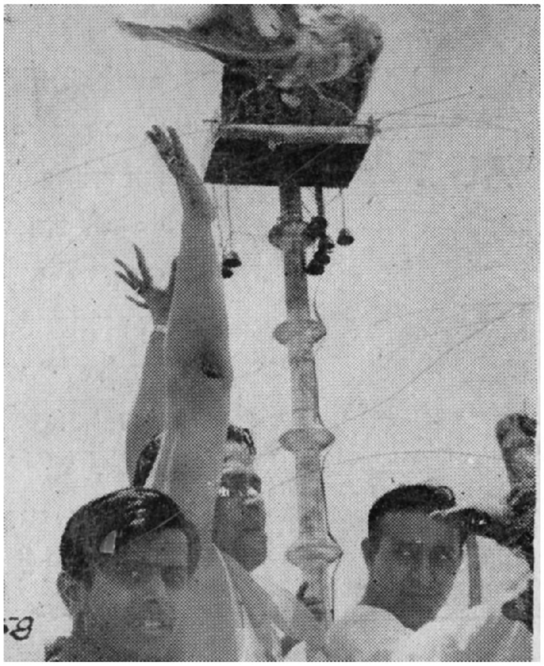

दादर जिनमंदिर में सानन्द प्रभु प्रतिष्ठा के बाद जब कलश और ध्वज चढ़ाये। तब भक्तों के जय-जयकार शब्दों से गगन गर्ज रहा था..... (कलश और ध्वज की ऊँचाई कितनी थी वह पास में ऊँचे हाथ करके खड़े भाईयों से अनुमान हो सकेगा।)

जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिष्ठा विधि के पावन दृश्यों के अवलोकन के लिये कहाननगर सोसायटी में, नीचे ऊपर छत में

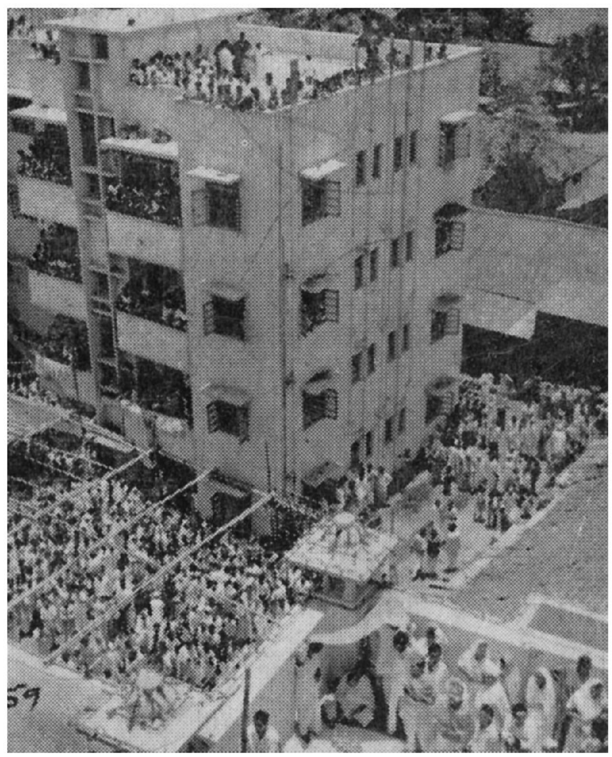

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।